श्री सद्गुर वे नमः

अनुरागसागर वाणी

चलो चलो सब कोउ कहै, मोहि अंदेशा और।
साहिब से परिचय नहीं, जायेंगे किस ठौर॥

–स्वामी मधु परमहंस जी

साहिब 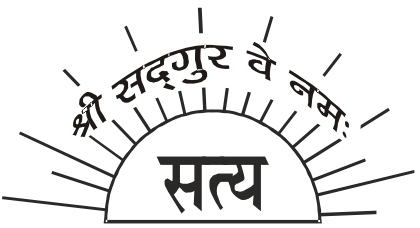

बन्दगी

सन्त आश्रम रांजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला जम्मू

अनुरागसागर वाणी

–स्वामी मधु परमहंस जी

प्रचार अधिकारी

–राम रतन जम्मू

© SANT ASHRAM RANJARI (JAMMU)
ALL RIGHTS RESERVED

प्रथम संस्करण – नवम्बर 2006
प्रतियाँ – 5000

Website Address.
www.sahib-bandgi.org

E-Mail Address.
*Santashram@sahib-bandgi.org
*Sadgurusahib@sahib-bandgi.org

प्रकाशक

साहिब बन्दगी सन्त आश्रम राँजड़ी

पोस्ट राया, तहसील साम्बा

ज़िला–जम्मू

Ph. (01923) 242695, 242602

मुद्रक : सरताज प्रिंटिंग प्रैस, जालन्धर शहर।

अनुरागसागर वाणी

विषय सूची	*पृष्ठ संख्या*
सतगुरु वंदना	7
शब्द के प्रेमी	8
अंत समय का मीत	11
मृतक होय सो साधु	12
गुरु कृपा से साधु कहावै	18
सृष्टि उत्पत्ति से पहले का रहस्य	21
सोलह सुत की उत्पत्ति	25
काल निरंजन कीन्ही तपस्या	27
निरंजन का पुनः तप	32
त्रिदेव की उत्पत्ति	41
निरंजन मन बनकर गुप्त हुआ	43
त्रिदेवों ने किया समुद्र मंथन	44
ब्रह्मा को दिया वेद ने रहस्य	48
ब्रह्मा गये आकाश में	52
नहीं पहुँच पाए विष्णु	53
ब्रह्मा को लेकर आद्य शक्ति व्याकुल हुई	55
ब्रह्मा को लाने चली गायत्री	57
शाप से ग्रसित हुए सब	65
विष्णु को हुए पिता के दर्शन	69
धर्मदास का संशय	70
विष्णु बने ठाकुर	72
चौरासी लाख योनियाँ बनीं	74
चार खानि के तत्व भेद	75
ज्ञान विभिन्नता का कारण	77
विभिन्न योनियों से मानव तन में आए हुओं की पहचान	78

चौरासी की धारा क्यों बनी? 82
रक्षक की कला दिखा अंत में जीवों को खा जाता है निरंजन 84
जीवों को कष्ट दिये निरंजन ने 86
अमर लोक से साहिब चले 87
निरंजन ने की साहिब से बहस 88
क्रोधित निरंजन साहिब पर झपटा और 97
असली रूप में आए साहिब
निरंजन अधीन हुआ 98
साहिब आए संसार में 101
गुप्त वस्तु है नाम 103
गुरु भक्ति का महत्व 104
सतयुग में आए साहिब 106
राम नाम का रहस्य 109
सतयुग के हंस 110
त्रेतायुग में साहिब का आगमन 112
द्वापर में आए साहिब 117
साहिब और धर्मदास 131

oooooo—oooooo

दो शब्द

भाईयो! यह संसार काल पुरुष का देश है, मन का देश है। साहिब से पहले जितने भी पीर, पैगम्बर, ऋषि, मुनि आदि आए, सबने भूलवश काल को ही परमात्मा मान उसकी भक्ति की, इसलिए मन की दुनिया में ही रह गये। आज के महात्माओं को भी परम पुरुष की भक्ति का रहस्य मालूम नहीं है, इसलिए वे अपने साथ-2 अपने शिष्यों की नैया भी डुबा रहे हैं। वाणी तो सभी कबीर साहिब की ले रहे हैं, पर कुल मिलाकर भक्ति काल पुरुष की ही कर रहे हैं। कुछ ऐसे ही सत्य लोक की बात कर रहे हैं, पर वास्तव में ना तो उनके पास सच्चा नाम ही है और ना वो वहाँ पहुँचे हुए हैं। वे भी मन के ही दास हैं, इसलिए आ-जाकर सगुण-निर्गुण में ही अटक रहे हैं। यह मन बड़ा ही जालिम है, जिसने बड़े-बड़े महात्माओं को भी अपने जाल में फँसा रखा है। वास्तव में यह उनके माध्यम से जीवों को भ्रमित कर रहा है। इसलिए सब नकली नाम का व्यापार कर रहे हैं।

संतो यह मन है बड़ा जालिम।।
मन कारण की इनकी छाया, तेहि छाया में अटके।
निरगुण सरगुण मन की बाजी, खरे सयाने भटके।।
मनहीं चौदह लोक बनाया, पाँच तत्व गुण कीन्हे।
तीन लोक जीवन वश कीन्हे, परे न काहू चीन्हे।।
जो कोउ कहै हम मन को मारा, जाकै रूप न रेखा।
छिन छिन में कितने रँग बदले, जे सपनेहुँ न देखा।।
रासातल यकईश ब्रह्मण्डा, सब पर अदल चलावै।
षट रस में भोगी मन राजा, सो कैसे के पावै।।
सबके ऊपर नाम निरक्षर तहँ लै मन को राखै।
तब मन की गति जानि परै, यह सत्य कबीर मुख भाखै।।

संसार से अलग ?

हमारा पंथ भक्ति जगत में वैज्ञानिक तरीके से क्रांति लाया है। सबसे पहले पाँच बाते पूरे संसार को अलग बता रहें है। * ये काल का देश है। यहाँ निरंजन का राज्य है * योगेश्वर इस स्थान तक बहुत मुश्किल से जाते है। ये चौदहवा लोक है। * इसी को वेदों ने निराकार, निरंकार, निरंजन, पार ब्रह्मा आदि नामों से पुकारा है। गण, गंधर्व, सिद्ध, साधक, ऋषि मुनि, पीर पैगंम्बर आदि यहाँ तक गये। * इसके आगे महा शून्य है, यहाँ कोई वस्तु नहीं है। इसके नाम **अचिन्त लोक, सोहंग लोक, मूल सुरति लोक, अंकुर लोक, इच्छा लोक, वाणी लोक** और **सहज लोक** है यह समस्त लोक महा शून्य में है। सहज अंश तक जो भी सृष्टि है इसका परम नाश है।

सहज पुरुष तक जेतक भाखा, यह रचना परलै ते राखा॥
आगे अछय लोक है भाई, आदि पुरूष यहां आप रहाई॥

* इसके ऊपर अमरधाम परम पुरुष का लोक है। यहाँ कभी भी परलय नहीं है।

जहवां से हंसा आया, अमर है वो लोकवा॥
तहां नहीं परले की छाया, नहीं तहां कछु मोह और माया॥
ज्ञान ध्यान को तहां न लेखा, पाप पुण्य तहंवा नहीं देखा॥
पवन न पानी पुरुष न नारी, हद अनहद तहं नाहिं विचारी॥

यहीं से साहिब आत्माओं के कल्याण के लिए आते हैं।

सतगुरु-वंदना

प्रथम बंदौं सतगुरु चरण, जिन अगम गम्य लखाइया।
ज्ञान दीप प्रकाश करि, पट खोल दरश दिखाइया।।
जिहि कारणे सिध्या पचे, सो गुरु कृपा ते पाइया।
अकह मूरति अमिय सूरति, ताहि जाय समाइया।।

पहले उन गुरु के चरण-कमलों की वंदना करो, जिन्होंने उस साहिब के दुर्गम घर में सहजता से पहुँचाकर उसका दर्शन करवा दिया। उन्होंने ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश करके अज्ञान के पर्दे हटा दिये और उस साहिब का दर्शन करवा दिया। जिस साहिब को खोजते-2 बड़े-2 सिद्ध मर गये, उन साहिब को गुरू की कृपा से पा उस अमृत में समा गया।

सद्गुरु दीन दयाल जी, तुम लग मेरी दौड़।
जैसे काग जहाज़ पर, सूझत कतहुँ न ठौर॥

शब्द के प्रेमी

कोई बूझई जन जौहरी, जो शब्द की पारख करै।
चितलाय सुनहिं सिखावनो, हितलाय के हिरदय धरै।।
तम मोह मो सम ज्ञान रवि, जब प्रगट हो तब सूझई।
कहत हौं मैं शब्द साँचा, संत कोई बूझई।।

कोई जौहरी ही सत्य शब्द रूपी सोने की पारख कर सकता है। साहिब कह रहे हैं कि जो समझा रहा हूँ, ध्यान से समझो और हितकारी जानकर हृदय में बिठा लो। मेरे समान ज्ञान का सूर्य जब प्रगट होता है, तभी अज्ञान का अँधेरा समझ पड़ता है। सत्य शब्द कहता हूँ, जिसे कोई संत ही समझ सकता है।

कोई इक संत सुजान, जो मम सब्द बिचारई।
पावै पद निर्वाण, बसत अनुराग जासु उर।।

जिसके हृदय में प्रेम होगा, वो ही निर्वाण पद को प्राप्त करेगा,जो मेरे इन शब्दों पर विचार करे, ऐसा कोई समझदार संत ही होगा।

धर्मदास पूछते हैं

हे सतगुरु बिनवौं कर जोरी। संशय प्रभु इक मेटो मोरी।।
जाके चित अनुराग समाना। ताको कहो कवन सहिदाना।।
अनुरागी कैसे लखि परई। बिन अनुराग जीव नहिं तरई।।
सो अनुराग प्रभु मोहि बताओ। देइ दृष्टांत भले समझाओ।।

धर्मदास जी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कह रहे हैं कि कृपा करके मेरा एक संशय मिटा दो; यदि प्रेम के बिना जीव नहीं तर सकता तो मुझे यह बता दो कि जो सच्चा प्रेमी होता है, उसकी पहचान क्या है!

साहिब कहते हैं

धर्मदास परखहु चित लाई। अनुरागी लछन सुखदाई।।
जैसे मृगा नाद सुनि धावै। मगन होय व्याध ढिग आवै।।

चित कछु संक न आवै ताही। देत शीश सो नाहिं डराही।।
सुनि-सुनि नाद शीश तिन दीन्हा। ऐसे अनुरागी को चीह्ना।।

साहिब कह रहे हैं कि प्रेमी के लक्षण बड़े ही सुख देने वाले हैं, ध्यान लगाकर समझो। कह रहे हैं कि सच्चे प्रेमी मृगा जैसे होते हैं। बाँसुरी की धुन से प्रेम करने वाला मृगा बाँसुरी की आवाज़ सुनकर दौड़ता हुआ शिकारी के पास आ जाता है और मग्न होकर बाँसुरी सुनने लगता है। तब उसके हृदय में कोई भय नहीं होता कि शिकारी उसे मार देगा। बाँसुरी की धुन सुनते-सुनते वो अपना शीश भी दे देता है, अपने प्राण गँवा बैठता है। सच्चे प्रेमी ऐसे ही होते हैं।

जरत नारि ज्यों मृत पति संगा। तन कौ जरत न मोरत अंगा।।
तजे सुगृह धन धाम सुहेली। पिय विरहिन उठ चलै अकेली।।
सुत लै लोगन आगे कीन्हा। बहुत मोह ताहि पुनि दीन्हा।।
बालक दुर्बल तोहि बिनु मरिहैं। धर भौ सून काहि बिधि करिहैं।।
बहु संपति तुमरे घर अहई। पलट चलहु गृह सब अस कहई।।
ताके चित कछु व्यापे नाहीं। प्रिय अनुराग बसै हिय माहीं।।

सच्चे प्रेमियों के लक्षण बताते हुए साहिब कह रहे हैं कि वे तो सती की तरह होते हैं, जो पति के साथ ही जल मरती है। उसके शरीर में आग लगती है, पर वो वहाँ से हिलती नहीं है। वो घर, धन-धाम, सहेलियों आदि सबका मोह छोड़कर प्रियतम के संग अकेली चल पड़ती है। लोग उसमें उसके बेटे का मोह भी डालते हैं, कहते हैं कि वो अकेला मर जायेगा। फिर कहते हैं कि अपना घर सूना करके क्यों जा रही हो। फिर धन का मोह भी डालते हैं कि तेरे पास बहुत सारा धन भी है, उसका सुख भोगना..... चल वापिस घर में; पर वो स्त्री पति के प्रेम को हृदय में ऐसे बसाए हुए होती है कि उसे किसी की बात अच्छी नहीं लगती।

तेहि बहुत समुझावते, नहिं नारि समझत सो धनी।
नहिं काम है धन धाम से, कछु मोहि तो ऐसी बनी।।
जग जीवना दिन चारि है, कोई नहिं साथी अंत को।
यह समुझि देखो सखी, ताते गहो पद कंत को।।

लोग उसे बहुत समझाते हैं, पर वो प्रेम की धनी किसी तरह से समझती नहीं है। वो कहती है कि पति के विरह में मेरी ऐसी हालत बन गयी है कि धन–धाम से अब कुछ भी मतलब नहीं रहा; मेरा जीवन तो कुछ दिन का ही है और फिर अंत समय का यहाँ कोई साथी भी नहीं है। ऐसा समझकर सती पति के चरण ही पकड़े रहती है, उसी के विरह में प्राण त्याग देती है।

सुन धर्मन अनुराग की बानी। तुम तत देखि कहे हित जानी।।
ऐसे जो नामहिं लौं लावै। कुल परिवार सबहिं बिसरावै।।
नारी सुत का मोह न आने। जीवन जनम सपन करि जाने।।
जग में जीवन थोर है भाई। अंत समय कोई नाहिं सहाई।।
बहुत पियारि नारि जग माहीं। मात पिता जाहि सम नाहीं।।
निज स्वारथ वह रोदन करहीं। तुरंतहि नैहर को चित्त धरही।।
सुत परिजन धन सपन सनेही। सत्यनाम गहु निज मति एही।।
निज तनु सम प्रिय और न आना। सो तनु संग न चलिहि निदाना।।

साहिब कह रहे हैं– हे धर्मदास! तुम्हारे हित के लिए मैंने सच्चे प्रेम के लक्षण तुमसे कहे, अब तुम इसमें से प्रेम का सार तत्व देख लो और जाति परिवार को भूलकर ऐसे नाम में लौ लगाए रखो। याद रहे, तुम्हारे दिल में पुत्र और स्त्री का मोह न आने पाए, तुम सांसारिक जीवन और जन्म को स्वप्न समान समझो, तुम भली भांति यह जान लो कि जीवन बहुत थोड़ा है और अंत में कोई सहायक नहीं होगा। जिस नारी को तुमने बहुत प्यार किया, जिसके समान माता– पिता को भी नहीं गिना, जिसके कारण प्राण भी दे दिये, वो नारी अंत समय में सहायक नहीं होती, यदि रोती भी है तो केवल अपने ही स्वार्थ के कारण और तुरन्त ही उसे मायके की याद आ जाती है। साहिब धर्मदास से कह रहे हैं कि पुत्र, परिवार के लोगों का प्यार और धन आदि को स्वप्न के समान समझो और सत्य नाम को पकड़े रहो....यही मेरी सीख है। क्योंकि जिस नारी के समान और किसी को प्रिय नहीं समझा, वो भी अंत समय साथ नहीं चलती।

अंत समय का मीत

ऐसा कोई न दीखे भाई। अंतहु यम सो लेहि छुड़ाई।।
अहै एक सो कहौं बखानी। जेहि अनुराग होय सो मानी।।
सतगुरु आहि छुड़ावनहारा। निश्चय मानहु कहा हमारा।।
कालहिं जीत हंस लै जाहीं। अविचल देस पुरुष जहँ आहीं।।
जहाँ जाय सुख होय अपारा। बहुरि न आवै यहि संसारा।।

इस संसार में ऐसा कोई नहीं दिखता, जो अंत समय में जीव को काल से बचा ले। एक है, और उसका मैं बखान करता हूँ, यदि उससे प्रीत लगा लो तो वो बचा सकता है। साहिब कह रहे हैं कि मेरा विश्वास करना, सद्गुरु ही अंत समय में जीव का सच्चा मीत बनकर उसे काल से छुड़ा लेता है। वो काल को जीतकर हंस(आत्मा) को अपने साथ उस अचल देश में ले जाता है, जहाँ कभी न मिटने वाला परम-पुरुष रहता है; जहाँ जाकर हंस सच्चे असीम आनन्द को प्राप्त करता है और जहाँ से फिर इस संसार में वापिस नहीं आना होता।

मृतक होय सो साधु

विश्वास कर मम बचन को, चढ़ सत की राह हो।
ज्यों सूरमा रन में धसे, फिर पाछे चितवत नाहिं हो।।
सती शूरा भाव निरखि के, सत्य को मग धारिये।
मृतक दसा विचार गुरुगम, काल कष्ट निवारिये।।

साहिब कह रहे हैं कि मेरी बात पर विश्वास करो और सत्य की राह पर ऐसे ही पाँव रखो जैसे कोई शूरमा युद्ध क्षेत्र में एक बार घुस जाता है तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखता। सती और शूरमा की भांति सत्य की राह पर दृढ़ होकर गुरु प्रेम से जीवित मरने की स्थिति प्राप्त करो, जिससे काल के कष्टों से छूट जाओगे।

कोई सूरा जीव, जो ऐसी करनी करै।।
ताहि मिलैगो पीव कहहिं कबीर बिचार कै ।।

साहिब कह रहे हैं कि ऐसी दृढ़ता से गुरु प्रेम के मार्ग पर चलने वाला, मरने की परवाह न करने वाला कोई शूरमा ही हो सकता है और निश्चय ही उसे साहिब रूपी प्रियतम की प्राप्ति होगी।

धर्मदास पूछते हैं

मृतक भाव प्रभु कहो समुझाई। जाते मन की तपन बुझाई।।
केहि विधि मिरतक होय सजीवन। कहो विलोय नाथ अमृत धन।।

धर्मदास जी ने पूछा कि मरने का भाव क्या है, कृपया मुझे समझाकर कहिए, जिससे मेरे मन की जिज्ञासा दूर हो। किस प्रकार यह जीव जीते जी मरकर उस अमृत को पा सकता है!

साहिब कहते हैं

धर्मदास यह कठिन कहानी। गुरु नाम ते कोई बिरले जानी।।

मृतक होय के खोजहु संता। शब्द बिचार गहैं मग अंता।।
जैसे भृंग कीट के पासा। कीटहि गहि सुरु गमि परकासा।।
पंखघात कर महिं तिहि डारे। भृंगी शब्द कीट जो धारे।।
तब लैगो भृंगी निज गेहा। स्वाँस देइ कीन्हे निज देहा।।
भृंगी शब्द कीट जो माना। वरण फेर आपन कर जाना।।
बिरला कीट होय सुखदाई। प्रथम अवाज़ गहै चित लाई।।
कोई दूजे कोई तीजे मानै। तनमन रहित शब्द हित मानै।।
भृंगी शब्द कीट ना गहई। तो पुनि कीट असारे रहई।।
धर्मदास यह कीट को भेवा। यहि मति शिष्य गहे गुरुदेवा।।

साहिब कह रहे हैं–हे धर्मदास! यह बड़ी ही कठिन कहानी है, गुरु कृपा से, गुरुप्रेम से किन्हीं विरले जनों ने इस रहस्य को जाना है; बिचारकर उन्होंने शब्द के सहारे भीतरी मार्ग को पकड़ा है और जीते –जी मृतक समान होकर उस सत्य की खोज की है। जैसे भृंगा कीड़े को पकड़कर अपना शब्द सुनाता है और यदि वो कीड़ा उसका शब्द सुन लेता है तो वो भी उसी की तरह हो जाता है, उसमें पंख भी आ जाते हैं। कीड़े में उड़ने की क्षमता नहीं है, पर फिर उसमें बहुत तेज़ उसी की तरह उड़ने की क्षमता आ जाती है। इस तरह भृंगा उसे अपने समान कर लेता है। जो भी कीड़ा भृंगे के शब्द को मान लेता है, सुन लेता है, वो अपना रंग खोकर उसी के रंग में रंग जाता है, उसी की तरह हो जाता है। वो कोई बिरला ही सुखदायी कीड़ा होता है, जो पहली आवाज़ में ही उस शब्द को पकड़ लेता है। कुछ कठोर दूसरी या तीसरी बार में मानते हैं, उसका शब्द सुनते हैं। पर जो कीड़ा उसका शब्द नहीं सुनता, वो वैसे ही रह जाता है, उसके समान नहीं हो पाता। साहिब धर्मदास को समझाते हुए कहते हैं कि ऐसे ही गुरु भी शिष्य को अपना शब्द सुनाकर अपने समान कर लेते हैं, पर शर्त यह है कि शिष्य उनके शब्द में रम जाए।

भृंग मत दृढ़ कै गहे तो, करौ निज सम तोहिं हो।
दुतिया भाव न चित व्यापे, सो लहै जिव मोहिं हो।।
गुरु शब्द निश्चय सत्य माने, भृंग गति तब पावई।
तजि सकल आसा शब्द वासा, कागा हंस कहावई।।

साहिब कह रहे हैं कि यदि भृंगे वाली बात को विचार कर मेरे शब्द को दृढ़ता से पकड़े रहो तो तुम्हें अपने समान कर दूँ। जो जीव मेरे शब्द के अलावा किसी दूसरे भाव को चित्त में नहीं लाता, वो मुझे पा जाता है। जब जीव गुरु के शब्द पर विश्वास करके उसे सत्य मानता है, तभी भृंगे वाली बात हो पाती है। जो अन्य सबकी आशा छोड़कर केवल शब्द में रमे रहता है, वो कोवे से हंस हो जाता है।

धर्मन सुन तुम मृतक सुभावा। मृतक होय सतगुरु पद पावा।।
मृतक छोह निभाव उर धारे। छोह निभावहि जीव उबारे।।

साहिब कह रहे हैं कि जीवित मृतक समान होने वाला कोई बिरला जीव होता है; वो गुरुपद को प्राप्त करता है। जो हृदय में प्रेम बसाए रखता है और उसे अच्छी तरह निभाता है, वो ही संसार सागर से खुद तरकर दूसरों को भी तारता है।

जस पृथ्वी कै गंजन होई। चित अनुराग गहो गुण सोई।।
कोई चंदन कोई विष्ठा डारे। कोई कोड़ि कृशी अनुसारे।।
गुण अवगुण तिन्ह सम कर जाना। महा विरोध अधिक सुख माना।।

जैसे पृथ्वी की दुर्दशा होती है, उसका तिरस्कार होता है और वो सब कुछ समान भाव से सहती है, ऐसे ही तुम भी सहो। कोई उस पर चन्दन फेंकता है तो कोई विष्ठा और कोई-कोई कौड़ी फेंकता है, पर पृथ्वी तो सबके गुण-अवगुणों को समान भाव से ग्रहण करती है, मान-अपमान को सम-भाव से ग्रहण करती है और किसी का विरोध नहीं करती हुई सुख से रहती है।

और मृतक भाव सुनि लेहू। निरखि परखि गुरु मग पग देहू।।
जैसे उख किसान बनावै। रती रती कै देह कटावै।।
कोल्हू महँ पुनि आप पिरावे। रस निसरै पुनि ताहि तपावै।।
निज तन दाहे गुड़ पुनि होई। बहुरि ताव दै खाँड बिलोई।।
ताहु माहिं ताव पुनि दीन्हा। चीनी तबहि कहावै लीन्हा।।
चीनी होय बहुरि तन जारा। ताते मिसरी ह्वै अनुसारा।।
मिसरी ते जब कंद कहावा। कहे कबीर सबके मन भावा।।
याही बिधि ते जो शिष सहई। गुरू कृपा सहजे भव तरई।।

साहिब कह रहे हैं कि मृतक का और स्वभाव बताता हूँ। जैसे किसान खेत में गन्ना बोता है तो पहले वो गन्ना एक-एक करके काटता है; फिर कोल्हू में पेरा जाता है और रस निकाला जाता है; फिर रस को कड़ाही में पकाया जाता है और तब जाकर वो गुड़ बनता है; फिर आँच पर लाल खाँड बनती है और फिर आँच पर जाकर सफेद चीनी बनती है। पुनः उस चीनी से मिसरी तैयार होती है और फिर कुज्जे वाली मिसरी के रूप में तैयार होकर सबके मन को भाती है। ऐसे ही जो शिष्य सब कुछ सहता हुआ गुरु मार्ग में दृढ़ रहता है, वो गुरु-कृपा से सहज ही भवसागर से पार हो जाता है।

मृतक होय सो साधु, सो सतगुरु को पावई।
मेटे सकल उपाध, तासु देव आसा करें।।

सच्चा साधु वही है जो जीवित मृतक हो जाए और वो ही सद्गुरु को पा सकता है। उसकी सब चिंता दूर हो जाती है और वो उस चौथे पद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, जिसकी आशा देवता लोग भी करते हैं।

साधु मार्ग कठिन धर्मदासा। रहनी रहे सो साधु सुवासा।।
पाँचों इन्द्री सम करि राखे। नाम अमीरस निशि दिन चाखै।।

साहिब कह रहे हैं-हे धर्मदास! साधु मार्ग बड़ा ही कठिन है। जो गुरु आज्ञा में रहे, वो ही पहुँचा हुआ साधु है; जो पाँचों इन्द्रियों को एक

साथ काबू में रखे और प्रतिदिन नाम रूपी अमृत का पान करे, वो साधु है।

प्रथमहिं चक्षु इन्द्री कहँ साधे। गुरु गम पंथ नाम अवराधे।।
सुंदर रूप चक्षु की पूजा। रूप कुरूप न भावे दूजा।।
रूप कुरूपहिं सम कर जाने। दरस विदेहि सदा सुख माने।।

सबसे पहले वो नयन इन्द्री को वश में करे और गुरु-प्रेम के मार्ग पर चलते हुए नाम में लगा रहे। नयन सुन्दर रूप की पूजा करते हैं और कुरूपता को नहीं देखना चाहते, पर साधु को रूप-कुरूप दोनों के प्रति समान भाव रखते हुए आत्मा की ओर देखकर सदा सुख मानना चाहिए।

इन्द्री श्रवण वचन शुभ चाहै। उत्कट वचन सुनत चित दाहै।।
बोल कुबोल दोउ सम लेखे। हृदय शुद्ध गुरुज्ञान विशेखै।।

कान इन्द्री अच्छे-अच्छे वचन ही सुनना चाहती है, उग्र, बुरे शब्द सुनते ही हृदय जलने लगता है, पर साधु को अच्छे-बुरे वचनों को समान समझना चाहिए।

नासिका इन्द्री सुबास अधीना। यहि सम राखै संत प्रवीना।।

नासिका इन्द्री अच्छी सुगन्ध के अधीन रहती है, पर चतुर साधु को इस दृष्टि से भी समभाव से रहना चाहिए, उसे सुगन्ध की तरफ आकर्षित नहीं होना चाहिए।

जिभ्या इन्द्री चाहै स्वादू। खट्टा मीठा मधुर स्वादू।।
सहज भाव में जो कछु आवै। रूखा फीका नहिं बिलगावै।।
जो कोई पंचामृत ले आवै। ताहि देख नहिं हरष बढ़ावै।।
तजे न रूखा साग अलूना। अधिक प्रेम सों पावै दूना।।

जीभ इन्द्री विभिन्न प्रकार के खट्ट-मीठे स्वाद चाहती है, पर साधु को सहज में जैसा भी मिल जाए, चाहे वो रूखा-सूखा ही क्यों न हो, कुछ अन्तर नहीं पड़ना चाहिए यानी उसे जीभ इन्द्री के स्वाद के पीछे नहीं भागना चाहिए। यदि कोई **पंचामृत** ले आए तो ज़्यादा खुश नहीं

होना चाहिए और यदि नमक़ रहित रूखा साग भी मिल जाए तो उसे त्यागना नहीं चाहिए बल्कि ज़्यादा ख़ुशी के साथ खाना चाहिए।

इन्द्री दुष्ट महा अपराधी। कुटिल काम कोई विरले साधी।।
कामिनि रूप काल की खानी। तजहु तासु संग हो गुरुज्ञानी।।

काम इन्द्री तो बड़ी ही दुष्ट और अपराधी है, जिसे कोई बिरला ही साध सका है, इसलिए जो स्त्री के सुंदर रूप को काल की खानि समझ उसका संग त्याग दे, वो ज्ञानी है, वो साधु है।

जबहि काम उमंग तन आवै। ताहि समय जो आप जुगावे।।
शब्द विदेह सुरत लै राखे। गहि मन मौन नाम रस चाखे।।
जब हिय तत्व में जाय समाई। तबही काम रहै मुरझाई।।

साधु का परिचय देते हुए साहिब कह रहे हैं कि उसे चाहिए, जब काम वेग के साथ शरीर में आए तो युक्तिपूर्वक अपने को बचाकर रखे, उसे रोके रखे। ऐसे में सार शब्द में अपनी सुरति लगाए रखे, मौन रहते हुए मन को पकड़े रहे और नाम रूपी रस का पान करता रहे क्योंकि जब सुरति नाम में जाकर समा जाती है, तब काम उदास होकर शांत हो जाता है।

काम परबल अति भयंकर, महा दारुण काल हो।
सुर नर मुनि यक्ष गन्धर्व किन्नर, सबहिं कीन्ह बेहाल हो।।
सबहि लूटे बिरले छूटे, ज्ञान गुरु जिन्ह दृढ़ गहे।
गुरु ज्ञान दीप समीप सतगुरु, भक्ति मारग तिन्ह लहे।।

साहिब कह रहे हैं कि यह काम बड़ा ही प्रबल है, यही काल रूप है, जिसने देवता, मनुष्य, मुनि, यक्ष, किन्नर(नपुंसक)सबको बेहाल किया हुआ है। काम ने सबको लूट लिया है। इससे कोई बिरला ही छूट सकता है, जो गुरु के ज्ञान को दृढ़ता से पकड़े रहे, हर समय चेतन रहे। जहाँ गुरु-ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश है, वहीं सद्गुरु का वास है। ऐसा जीव ही भक्ति मार्ग को पा सकता है, उस पर चल सकता है।

गुरु कृपा ते साधु कहावै

गुरु किरपा ते साधु कहावै। अनल पच्छ ह्वै लोक सिधावै।।
धर्मदास यह परखो बानी। अनलपच्छ गति कहों बखानी।।
अनलपच्छ जो रहे अकाशा। निशि रहै पवन की आशा।।
दृष्टिभाव तिन रति विधि ठानी। यहि विधि गर्भ रहै तेहि जानी।।
अंड प्रकाश कीन्ह पुनि तहँवा। निराधार अण्ड रहु जहँवाँ।।
मारग माहिं पुष्ट भो अण्डा। मारग माहिं बिहरभा खण्डा।।
मारग माहिं चक्षु तिन पावा। मारग माहिं पंख परभावा।।
महि ढिग आवा सुधि भइ ताही। इहाँ मोर आश्रम नहिं आही।।
सुरति सम्हार चले पुनि तहँवा। मात पिता को आश्रम जहँवा।।
अनल पच्छ तेहि लेन न आवै। उलट चीन्ह निज धरहि सिधावै।।
बहु पंछी जग माहिं रहावै। अनल पच्छ सम नाहिं कहावैं।।
अनल पच्छ जस पच्छिन माहीं। अस बिरले जिव नाम समाहीं।।
यह विधि जो जिव चेते भाई। मेटि काल सतलोक सिधाई।।

गुरु-कृपा से ही जीव साधु समान होता है और अनल पक्षी के समान होकर अमर लोक को जाता है। साहिब धर्मदास से कह रहे हैं कि अब मैं अनल पक्षी की दशा का बखान करता हूँ, तुम मेरी इस वाणी को परख लो।

अनल पक्षी पृथ्वी से बहुत ऊपर शून्य में रहता है, ज़मीन पर आते ही मर जायेगा। वो सोता भी हवा में ही है , उसका कोई घोंसला नहीं होता। फिर हवा में ही रहता है और खाता भी हवा ही है.... दाना नहीं चुगता है अनल पक्षी। वो विषय भी नहीं करता है, मात्र दृष्टि से अपनी मादा को गर्भवती कर देता है। फिर हवा में ही वो अण्डा देती है और

अण्डा नीचे गिरना शुरू होता है। इतनी ऊँचाई से जब वो नीचे की ओर आता है तो आते-आते रास्ते में ही वो अण्डा पकता है। मुर्गी तो बैठकर पकाती है, पर वो अण्डा खुद ही पक जाता है और फिर रास्ते में ही फूट भी जाता है। रास्ते में ही उसे आँखें भी आ जाती हैं। पृथ्वी पर गिरे तो मर जाता, पर पृथ्वी पर गिरने से पहले ही उसे सुधि आ जाती है कि यहाँ उसका घर नहीं है। अब सुरति संभाल कर वो खुद ही अपने घर की ओर चल पड़ता है; उसके माता-पिता उसे लेने नहीं आते हैं। इस संसार में बहुत से पक्षी हैं, पर अनल पक्षी समान निर्मल कोई नहीं। जैसे अनल पक्षी खुद अपने माता-पिता के देश में चलता हैं, ऐसे ही बिरले जीव नाम में समाए रहते हैं और जो ऐसा करते हैं, वे काल को मारकर सतलोक चले जाते हैं।

मन बच कर्म गुरु ध्यान, गुरु आज्ञा निरखत चलै।।
देहि मुक्ति गुरु दान, नाम विदेह लखाय कै।।

जो मन, बचन और कर्म से गुरु का ही ध्यान करता रहे और जीवन-भर उनकी आज्ञा में चले। विदेह नाम का ज्ञान देकर सद्गुरु उसे मुक्ति का दान देते हैं।

जब लग ध्यान विदेह न आवै। तब लग जिव भव भटका खावै।।
ध्यान विदेह औ नाम विदेहा। दोइ लख पावे मिटै संदेहा।।
छन इक ध्यान विदेह समाई। ताकी महिमा बरनि न जाई।।
काया नाम सबै गोहरावे। नाम विदेह बिरले कोई पावे।।
जो युग चार रहे कोई कासी। सार शब्द बिन यमपुर बासी।।
नीमखार बद्री परधाना। गया द्वारिका प्राग अस्नाना।।
अड़सठ तीरथ भू परिकरमा। सार शब्द बिन मिटे न भरमा।।
कहँ लग कहों नाम परभाऊ। जो सुमिरे जम त्रास नसाऊ।।

जब तक ध्यान विदेह स्थिति को प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक जीव

भटकता ही रहता है, जब विदेह ध्यान और विदेह नाम दोनों का भेद पता चल जाए, तब ही सब संदेह दूर होते हैं। यदि ध्यान एक पल के लिए भी विदेह नाम में समा जाए तो फिर उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। काया से संबंधित नाम यानी मुहँ से जपने वाला नाम तो सभी जपते हैं, पर विदेह नाम कोई बिरले ही पाते हैं। चाहे कोई तीर्थादि जगहों पर जाकर कितना ही स्नान करे, चाहे अड़सठ तीर्थ भी घूम आए, पूरी पृथ्वी की परिक्रमा भी कर ले, तो भी सार शब्द के बिना भ्रम नहीं मिट सकता। साहिब कह रहे हैं कि नाम के प्रभाव को कहाँ तक कहूँ, जो इसका सुमिरन करता है, उसे मृत्यु का भय भी नहीं रहता।

सार शब्द सु विदेह स्वरूपा। नि:अच्छर वहि रूप अनूपा।।
तत्व प्रकृति प्रभाव सब देहा। सार शब्द नि:तत्व विदेहा।।
सार नाम सतगुरु सों पावे। तब हंसा अमर लोक सिधावे।।
धर्मराय ताको सिर नावे। जो हंसा नि:तत्व समावे।।

सार शब्द विदेह स्वरूप है, वो अक्षर से परे है, सबसे निराला है। पाँच तत्त्वों की देही है, पर सार शब्द तत्व रहित है, विदेह है। जब सद्गुरु से सार नाम मिल जाता है तो जो जीव उस नाम की डोरी को पकड़ कर संसार-सागर से पार अपने देश अमर-लोक चला जाता है, उस अमर तत्व में समा जाता है; उसे धर्मराज भी प्रणाम करता है।

सृष्टि उत्पत्ति से पहले का रहस्य

धर्मदास पूछते हैं

अब साहब मोहि देउ बताई। अमर-लोक सो कहाँ रहाई।।
कौन द्वीप हंस को बासा। कौन द्वीप पुरुष रह बासा।।
भोजन कौन हंस तहँ करई। औ बानी कहँ तहाँ उच्चरई।।
कैसे पुरुष लोक रच राखा। द्वीपहिं को कैसे अभिलाखा।।
तीन लोक उत्पति भाखो। वर्णहु सकल गोय जनि राखो।।
काल निरंजन किस विधि भयऊ। कैसे षोडश सुत निर्मयऊ।।
कैसे चार खानि विस्तारी। कैसे जीव काल वश डारी।।
कैसे कूर्म शेष उपराजा। कैसे मीन बराहहिं साजा।।
त्रय देवा कौने विधि भयऊ। कैसे महि अकाश निरमऊ।।
चन्द्र सूर्य कहु कैसे भयऊ। कैसे तारागण सब ठयऊ।।
किस विधि भई शरीर की रचना। भाषो साहिब उत्पति बचना।।

हे साहिब! कृपा करके अब मुझे बताओ कि वो अमर लोक कहाँ है? उस अमर लोक में जीव किस स्थान पर रहते हैं? वहाँ आत्मा भोजन क्या करती है और वहाँ भाषा कौन सी है ? सब लोक कैसे बने? तीन-लोक की उत्पत्ति कैसे हुई? काल-पुरुष कैसे हुआ? सोलह सुत की रचना कैसे हुई? यह निर्मल आत्मा चार खानियों में कैसे गयी? आत्माएँ काल-पुरुष के चंगुल में कैसे फँस गयीं। त्रिदेव कैसे बने? पृथ्वी और आकाश कैसे बने? सूर्य, चाँद और तारे आदि कैसे बने? हे सद्गुरु! कृपा करके सृष्टि का सारा भेद मुझे समझाकर कहिए, जिससे मेरा सब संशय दूर हो।

आदि उत्पति कहो सतगुरु, कृपा करो निज दास को।
बचन सुधा सु प्रकाश कीजै, नाश हो यम त्रास को।।

एक एक विलोय बरनहु, दास मोहि निज जानि कै।
सत्य वक्ता सद्गुरु तुम, लेव निश्चय मैं मानि कै॥

धर्मदास जी प्रार्थना करते हुए कह रहे हैं कि अपने दास पर कृपा करके सृष्टि का सारा भेद समझाकर कहिए। कह रहे हैं कि एक-एक बात अलग-अलग करके बताना; जो भी आप कहेंगे, मैं उसे सत्य मानूँगा, क्योंकि आप झूठ नहीं बोलते हैं।

साहिब कहते हैं

धर्मदास अधिकारी पाया। ताते मैं कहि भेद सुनाया।।
अब तुम सुनहु आदि की बानी। भाखा उत्पति प्रलय निशानी।।

साहिब कह रहे हैं कि जब मुझे अधिकारी जीव मिलते हैं तो मैं यह भेद सुनाता हूँ।

तबकी बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महि पाताल अकाशा।।
जब नहिं कूर्म बराह औ शेषा। जब नहिं शारद गोरि गणेशा।।
जब नहिं हते निरंजन राया। जिन जीवन कह बाँधि झुलाया।।
तैतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताइऊँ काहीं।।
ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया।।
तब सब रहे पुरुष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं।।

हे धर्मदास! मैं तब की बात बता रहा हूँ, जब धरती और आकाश नहीं थे; जब कूर्म, शेष, बाराह, शारद, गोरी, गणेश आदि कोई भी नहीं था; जब जीवों को कष्ट देने वाला निरंजन भी नहीं था; जब तैतीस करोड़ देवता भी न थे..... और अधिक क्या बताऊँ ! ब्रह्मा विष्णु और महेश भी न थे, वेद, शास्त्र, पुराण आदि भी न थे..... लेकिन वो एक था और सभी जीव उसमें रहते थे, जैसे बट वृक्ष के मध्य उसकी छाया रहती है।

आदि उत्पति सुनहु धर्मन, कोई न जानत ताहि हो।
सबहिं भो बिस्तार पाछे, साख देउ मैं काहि हो।।

वेद चारों नहिं जानत, सत्य पुरुष कहानियाँ।
वेद को तब मूल नाहीं, अकथ कथा बखानियाँ।।

साहिब ने धर्मदास से कहा कि मैं तुमको आदि उत्पत्ति का रहस्य कहता हूँ, जिसे कोई नहीं जानता है। साकार-निराकार, लोक-लोकान्तर आदि सब बाद में बने, अतः गवाही किसकी दूँ! चारों वेद भी सत्य-पुरुष की कहानियाँ नहीं जानते हैं और निराकार यानी काल-पुरुष की कथाएँ कहते हैं।

सत्य पुरुष जब गुप्त रहाये। कारण करण नहीं निरमाये।।
समपुट कमल रह गुप्त सनेहा। पुहुप माहिं रह पुरुष विदेहा।।
इच्छा कीन्ह अंश उपजाये। हंसन देख हरष बहु पाये।।
प्रथमहिं पुरुष शब्द परकाशा। दीप लोक रचि कीन्ह निवासा।।
चारि कर सिंहासन कीन्हा। तापर पुहुप दीप करु चीन्हा।।
पुरुष कला धरि बैठे जहिया। प्रगटी अगर वासना सहिया।।
सहस अठासी दीप रचि राखा। पुरुष इच्छा तै सब अभिलाखा।।
सबै द्वीप रहु अगर समायी। अगर वासना बहुत सुहायी।।

साहिब कह रहे हैं कि आरम्भ में परम-पुरुष गुप्त थे, उनका न कोई साथी था, न संगी। एक समय उनकी मौज हुई और उन्होंने अंश उत्पन्न किये। सबसे पहले उन्होंने एक शब्द पुकारा, अद्‌भुत श्वेत प्रकाश उत्पन्न किया और स्वयं उस प्रकाश में समा गये; वो ही अमर-लोक कहाया। फिर उनकी इच्छा हुई और उन्होंने अनेक द्वीपों की रचना की।

वास्तव में यह रहस्य छिपाया गया। मैं बताता हूँ। सर्वप्रथम परम-पुरुष ने इच्छा करके एक शब्द पुकारा, जिससे एक अद्‌भुत श्वेत रंग का प्रकाश हुआ और वो प्रकाश अनन्त में फैल गया। वो प्रकाश सांसारिक प्रकाश की तरह न था; वो इतना अद्‌भुत था कि जिसका एक-एक कण करोड़ों सूर्यों को भी लज्जा दे।

जब वो प्रकाश अनन्त में फैल गया तो फिर वे सत्य पुरुष स्वयं उस प्रकाश में समा गये। अब वो प्रकाश चेतन हो गया, जीवित हो गया। जिस प्रकार आत्मा के शरीर में आने से शरीर चेतन हो जाता है, उसी प्रकार वो प्रकाश भी जीवित हो उठा। प्रकाश में आने से पहले वे सत्य-पुरुष गुप्त थे जबकि प्रकाश में आकर ही वे सत्य पुरुष कहलाए और वो अद्‌भुत प्रकाश, जो स्वयं सत्य-पुरुष ही थे, अमर लोक कहलाया।

अभी भी सत्य-पुरुष अकेले ही थे। फिर उनकी मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश को अर्थात अपने ही स्वरूप को अपने में से खिटका दिया।.....अनन्त बिन्दुएँ हुईं, जो वापिस उस अद्‌भुत प्रकाश में आयीं। जिस प्रकार समुद्र में से पानी को मुट्‌ठी में या हाथों में भरकर उछालने से कई कण बिखर जाते हैं, उसी तरह उस प्रकाश में से भी अनेक कण बिखर गये। लेकिन जिस प्रकार समुद्र की बूँदें पुनः समुद्र में गिर समुद्र का ही रूप हो जाती हैं, उसी तरह वे अनन्त कण भी वापिस उस अद्‌भुत प्रकाश में आए, लेकिन अचरज यह था कि वे बिन्दुएँ जब वापिस प्रकाश में आयीं तो वे प्रकाशमय नहीं हुईं, क्योंकि सत्य-पुरुष ने इच्छा की कि इनका अपना अलग अस्तित्व भी रह जाए। वे ही जीव कहलाए। वे सब जीव उसी अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करने लगे।

आत्माओं का उस प्रकाश में अलग अस्तित्व के साथ विचरण करना बड़े अचरज की बात थी, क्योंकि समुद्र की बूँदों का समुद्र में अपना अलग अस्तित्व नहीं होता। जिस प्रकार पानी में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सभी जीव उस प्रकाश में घूमने लगे। यह देख परम-पुरुष बड़े खुश हुए और उन आत्माओं को बहुत प्यार करने लगे। बहुत समय ऐसे व्यतीत हो गया और सभी जीव उस अद्‌भुत प्रकाश में विचरण करते हुए परम आनन्द लूट रहे थे। फिर परम-पुरुष ने शब्दों से पुत्र उत्पन्न किये अर्थात जो बोल रहे थे, वो पुत्र बन रहा था।

सोलह सुत की उत्पत्ति

दूजे शब्द जु पुरुष परकासा। निकसे कूर्म चरण गहि आसा।।
तीजे शब्द भयेजु पुरुष उच्चारा। ज्ञान नाम सुत उपजे सारा॥
टेकी चरण सम्मुख ह्वै रहेऊ। आज्ञा पुरुष द्वीप तिन्ह दएऊ॥
चौथे शब्द भये पुनि जबही। विवेक नाम सुत उपजे तबहीं॥
आप पुरुष किये द्वीप निवासा। पंचम शब्द सो तेज परकासा॥
पांचव शब्द जब पुरुष उच्चारा। काल निरंजन भो औतारा॥
तेज अंग ते काल ह्वै आवा। ताते जीवन कह संतावा॥
जीवरा अंश पुरुष का आहीं। आदि अंत कोउ जानत नाहीं॥
छठएँ शब्द पुरुष मुख भाषा। प्रगटे सहज नाम अभिलाषा।।
सतएँ शब्द भयो संतोषा। दीन्हो दीप पुरुष परितोषा।।
अठएँ शब्द पुरुष उच्चारा। सुरति सुभाव दीप बैठारा।।
नवमें शब्द अनंद अपारा। दशएँ शब्द छमा अनुसारा।।
ग्यारहें शब्द नाम निष्कामा। बारहें सब्द सुत जलरंगी नामा।।
रहें सब्द अचिन्त सुत जानो। चौदहें शब्द सुत प्रेम बखानो।।
पन्द्रहें शब्द सुत दीन दयाला। सोलहें सब्द भे धीर्य रसाला।।
सत्रहें शब्द सुत योग संतायन। एक नाल षोडश सुत पायन।।

जैसे ही परम-पुरुष ने इच्छा करके दूसरा शब्द पुकारा तो उससे कूर्म उत्पन्न हुआ। इसी तरह तीसरे शब्द से ज्ञान और चौथे से विवेक उत्पन्न हुआ। ये सब परम-पुरुष ने इच्छा से पैदा किए, पर आत्मा इच्छा से नहीं बनी, वो परम-पुरुष का अंश है। फिर परम पुरुष ने पांचवा शब्द तेज अंग से पुकारा। जिसके तेज से निरंजन पैदा हुआ। तो छठे शब्द से सहज की उत्पत्ति हुई, सातवें से संतोष, ग्यारहवें से निष्काम, बारहवें से जलरंगी, तेरहें से अचिन्त, चौदहें से प्रेम, पन्द्रहवें से दीनदयाल, सोलहवें से धैर्य और सत्रहवें शब्द से योग संतायन हुए। ये सब परम-पुरुष के 16 पुत्र

हुए, जिन्हें उन्होंने सुरति की एक नाल से पिरो दिया।

शब्दहिते भयो सुतन अकारा। शब्द ते लोक द्वीप विस्तारा।।
अग्र अमी दिय अंश अहारा। द्वीप द्वीप अंशन बैठारा।।
अंशन शोभा कला अनंता। होत तहाँ सुख सदा बसंता।।
सब सुत करें पुरुष को ध्याना। अमी अहार सदा सुख माना।।

शब्द से ही परम-पुरुष ने पुत्र उत्पन्न किये और शब्द से ही अमर-लोक के द्वीपों की रचना की। हरेक द्वीप पर अंशों को स्थान दिया और सब उस अमृत(परम-पुरुष के स्वरूप) का पान करने लगे। अंशों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वहाँ सदा आनन्द रहता है। सभी पुत्र परम-पुरुष का ध्यान करने लगे और अमृत भोजन करते हुए सुख से रहने लगे।

द्वीप करि को अनंत सोभा, नहिं बरनत सो बनै।
अमिय कला अपार अद्‌भुत, सुतन शोभा को गनै।।
पुरुष के उजियार से सुत, सबै दीप उजियार हो।
सतपुरुष रोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करोर हो।।

अमर-लोक के द्वीपों और परम-पुरुष के पुत्रों की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। परम-पुरुष के प्रकाश से सब द्वीप प्रकाशित रहते हैं; उनके एक रोम मात्र का प्रकाश करोड़ों सूर्यों और चन्द्रमा के बराबर है।

सतपुर आनन्द धाम, सोक मोह दुख तहँ नहीं।
हंसन को बिसराम, पुरुष दरस अँचवन सुधा।।

सत्य लोक आनन्द का घर है; वहाँ दुख, मोह आदि नहीं है; वहाँ हंस सत्य पुरुष के अमृत का पान करते हैं।

काल निरंजन कीन्हीं तपस्या

यहि बिधि बहुत दिवस गयो बीती। ता पीछे ऐसी भई रीती।।
धर्मराय अस कीन्ह तमासा। सो चरित्र बूझहु धर्मदासा।।
युग सत्तर सेवा तिन कीन्हा। इक पग ठाढ़ पुरुष चित दीन्हा।।
सेवा कठिन भाँति तिन कीन्हा। आदि पुरुष हर्षित होय चीन्हा।।

अमर लोक में सबको आनन्द से जीवन व्यतीत करते हुए बहुत समय बीत गया। उसके बाद पाँचवाँ पुत्र निरंजन परम-पुरुष का ध्यान करने लगा। उसने 70 युग तक एक पाँव पर खड़े होकर एकाग्रचित्त परम-पुरुष का ध्यान किया। जब उसने इतना कठिन तप किया तो परम-पुरुष प्रसन्न हुए।

परम पुरुष ने कहा

पुरुष अवाज़ उठी तब बानी। कहा जानि तुम सेवा ठानी।।

परम-पुरुष ने पूछा कि इतनी घोर सेवा, तप क्यों कर रहे हो!

निरंजन ने कहा

कहै धरम तब सीस नमायी। देहु ठौर जहँ बैठों जायी।।

निरंजन ने कहा कि मुझे भी कहीं स्थान दे दो।

परम पुरुष ने कहा

आज्ञा किये जाहु सुत तहवाँ। मानसरोवर दीप है जहवाँ।।

कहा-हे पुत्र! जाओ, तुम मानसरोवर द्वीप में जाकर रहो।

चले धरम तब मानसरोवर। बहुत हरषचित करत कलोहर।।
मानसरोवर आये जहिया। भये आनन्द धरम पुनि तहिया।।
बहुरि ध्यान पुरुष को कीन्हा। सत्तर युग सेवा चित दीन्हा।।
यक पगु ठाढ़े सेवा सेवा लायी। पुरुष दयाल दया उर आयी।।

मानसरोवर में आकर काल-निरंजन बड़ा खुश हुआ और आनन्द से रहने लगा। वहाँ वो पुनः परम-पुरुष का ध्यान करने लगा। अबकी बार उसने पुनः 70 युग तक एक पाँव पर खड़े होकर ध्यान किया। परम-पुरुष के हृदय में दया आयी।

विकस्यो पुहुप उठ्यो जब बानी। बोलत वचन उठ्यो अधरानी।
जाहु सहज तुम धरम कै पासा। अब कस ध्यान कीन्ह परगासा।।

परम-पुरुष ने तब सहज को निरंजन के पास भेजा, कहा-पूछो कि अब क्यों ध्यान कर रहे हो, क्या चाहते हो!

चले सहज तब सीस नवाई। धरमराय पहँ पहुँचे जाई।।
कहे सहज सुन भ्राता मोरा। सेवा पुरुष मान लइ तोरा।।
अब का माँगहु सो कह मोही। पुरुष अवाज़ दीन्ह यह तोही।।

परम-पुरुष की आज्ञा पाकर उन्हें प्रणाम करके निरंजन के पास आए और कहा-हे भाई! परम-पुरुष तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हैं, इसलिए उन्होंने तुम्हारे लिए यह संदेश भिजवाया है कि अब जो माँगना चाहते हो, मुझसे कहो।

निरंजन ने कहा

अहो सहज तुम जेठे भाई। करो पुरुष सो बिनती जाई।।
इतना ठाँव न मोहि सुहाई। अब मोहि बकसि देहु ठकुराई।।
मोरे चित अस भौ अनुरागा। देऊ देश मोहि करहु सभागा।।
कै मोहि देहु लोक अधिकारा। कै मोहि देहु देस यक न्यारा।।

निरंजन ने सहज से कहा कि तुम मेरे बड़े भाई हो, तुम परम-पुरुष के पास जाकर विनती करते हुए कहना कि मैं इतने स्थान से खुश नहीं हूँ, इसलिए अब कृपा करके या तो अमर-लोक का राज्य ही मुझे दे दो या फिर अलग से एक न्यारा देश दो, जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो।

चले सहज सुनि धर्म के बाता। जाय पुरुष सो कहे विख्याता।।
जो कछु धर्मराय अभिलाषी। तैसे सहज सुनाये भाषी।।

निरंजन की बात सुनकर सहज वापिस परम-पुरुष के पास आए और जो कुछ निरंजन ने कहा, वो सुना दिया।

सुन्यो सहज के बचन जबहीं, पुरुष बैन उच्चारे ऊ।
धरम से संतुष्ट हैं हम, बचन मम हिय धारे ऊ।।
लोक तीनों ताहि दीन्हो, शून्य देश बसावहू।।
करहु रचना जाय तहवाँ, सहज वचन सुनावहू।।

परम-पुरुष ने सहज के वचन सुनकर कहा कि मैं निरंजन से बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए उसके पास जाकर कहो कि मैंने उसे 17 असंख्य चौकड़ी युग का राज्य दिया है; वो शून्य में एक अलग देश बसा ले।

आय सहज तब वचन सुनावा। सत्य पुरुष जस कहि समुझावा।।
सुनतहिं बचन धर्म हरषाना। कछुक हरष कछु विस्मय आना।।

जब सहज ने निरंजन को परम-पुरुष की आज्ञा सुनाई तो निरंजन बहुत खुश हुआ। पर उसे कुछ आश्चर्य भी था। तो कहा-

कहे धर्म सुनु सहज पियारा। कै से रचौं करौं विस्तारा।।
पुरुष दयाल दीन्ह मोहि राजू। जानू न भेद करों किम काजू।।
गम्य अगम्य मोहि नाहिं आयी। करो दया सो युक्ति बतायी।।
विनती करौ पुरुष सों मोरी। अहो भ्रात बलिहारी तोरी।।
किहि विधि रचूँ नौ खंड बनाई। हे भ्राता सो आज्ञा पाई।।
मो कहँ देहु साज प्रभु सोई। जाते रचना जगत की होई।।

निरंजन ने सहज से कहा कि परम-पुरुष ने मुझे तीन-लोक का राज्य तो दिया, पर मुझे रचना का भेद मालूम ही नहीं तो फिर कैसे करूँ! मुझे वो सामग्री तो दो, जिससे मैं रचना कर सकूँ।

तबही सहज लोक पगु धारा। कीन्ह दण्डवत् बारं बारा।।

सहज फिर परम-पुरुष के पास गया और दण्डवत् प्रणाम किया।

अहो सहज कस इहवाँ आऊ। सो हमसों तुम सब्द सुनाऊ।।

परम-पुरुष ने सहज से पूछा कि किस कारण से आए हो, सो मुझे बताओ।

कह्यो सहज तब धर्म की बाता। जो कछु धर्म कही विख्याता।।

तब सहज ने निरंजन की विनती सुना दी।

आज्ञा पुरुष दीन्ह तेहि बारा। सुनो सहज तुम बचन हमारा।।
कूर्म उदर आहि सब साजा। सो ले धरम करे निज काजा।।
विनती करे कूर्म सो जायी। माँगि लेइ तेहि माथ नवायी।।

परम-पुरुष ने सहज को आज्ञा दी, कहा कि कूर्म के पेट में रचना का सब सामान है; तुम निरंजन को कहो कि कूर्म के पास जाकर विनती करे और उससे वो सामान माँग ले।

गये सहज पुनि धर्म कै पासा। आज्ञा पुरुष कीन्ह परगासा।।
विनती करो कूर्म सो जाई। माँगि लेहु तेहि सीस नवाई।।
जाय कूर्म ढिग सीस नवावहु। करिहैं कृपा बहुत तब पावहु।।

सहज ने निरंजन के पास जाकर परम-पुरुष की आज्ञा सुनाई, कहा कि कूर्म के पास जाकर विनती करना और उससे माँग लेना; वो तुम्हें दे देगा।

चलि भौ धरम हरष तब बाढ़ो। मनहिं कीन गुमान अति गाढ़ो।।
जाय कूर्म के सन्मुख भयऊ। दंड परनाम एक नहिं कियऊ।।
अमी स्वरूप कूर्म सुखदाई। तपत न तनि को अति शितलाई।।
करि गुमान देख्यो जब काला। कूर्म धीर अति है बलवाला।।
बारह पालँग कूर्म शरीरा। छै पालंग धरम बलवीरा।।
धावै चहुँ दिश रहै रिसाई। किहि विधि लीजे उत्पति भाई।।
कीन्हो रोष कोपि धर्म धीरा। जाय कूर्म कै सन्मुख भीरा।।
कीन्हो काल सीस नख घाता। उदरते निकसे पवन अघाता।।
तीन सीस कै तीनहु अंशा। ब्रह्मा विष्णु महे श्वर बंशा।।
पाँच तत्व धरती आकाशा। चन्द्र सूर्य उडगन रहिवासा।।

निसर्‌यो नीर अग्नि शशि सूरा। निसर्‌यो नभ ढाकन महि अस्थूला।।
छीना सीस कूर्म को जबही। चले परसेव ठाँव पुनि तबही।।
जबही परसेव बुंद जल दीन्हा। उंचास कोट पृथ्वी को चीन्हा।।

निरंजन बड़े ही घमण्ड के साथ कूर्म जी के पास पहुँचा और वहाँ जाकर कोई प्रणाम नहीं किया, कोई प्रार्थना नहीं की। पर कूर्म जी शांत थे, शीतल थे, उन्हें गुस्सा नहीं आया। निरंजन ने देखा कि कूर्म तो बहुत बलवान है। उनका शरीर उससे दुगुना था। निरंजन क्रोधित होकर उसके चारों ओर दौड़ने लगा, सोचने लगा कि कैसे इससे उत्पत्ति का सामान ले लूँ। उसने नख से उनके शीश पर प्रहार किया और तीन शीश काट कर खा लिए । तब उनके पेट से पाँच तत्व , धरती, आकाश, सूर्य, चाँद, तारे आदि सब सूक्ष्म रूप से निकले। वो सब सामान लेकर निरंजन शून्य में आया और रचना कर डाली। पर यह निर्जीव सृष्टि थी।

कूर्म ने कहा

आदि कूर्म रह लोक मँझारा। तिन पुनि ध्यान पुरुष अनुसारा।।
निरंकार कीन्हो बरियाया। काल कला धरि मोपहँ आया।।
उदर बिदार कीन्ह उन मोरा। आज्ञा जानि कीन्ह नहिं थोरा।।

उधर कूर्म जी ने परम-पुरुष से ध्यान में कहा कि निरंकार (निरंजन) ने बल का प्रयोग करके मेरा पेट फाड़ा है, पर आपकी आज्ञा जानकर मैंने उसे कुछ नहीं कहा।

परम-पुरुष ने कहा

पुरुष अवाज़ कीन्ह तेहि बारा। छोट वह आहि तुम्हारा।।
आही यही बड़न की रीती। औगुन ठाँव करहिं वह प्रीती।।

परम-पुरुष ने कहा कि वो तुम्हारा छोटा भाई है और बड़ों की रीत यही होनी चाहिए कि छोटे चाहे उपद्रव भी करें, उन्हें माफ कर देना चाहिए, उनसे प्रेम करना चाहिए।

निरंजन का पुनः तप

पुरुष ध्यान पुनि कीन्ह निरंजन। युग अनेक किय संयम।।
स्वार्थ जानि सेवा तिन लाई। करि रचना बैठे पछताई।।
धर्मराय तब कीन्ह बिचारा। कैसेलो त्रयपुर विस्तारा।।
स्वर्ग मृत्यु कीन्हों पाताला। बिनाबीज किमि कीजै ख्याला।।
कौन भाँति कस करब उपाई। किहि विधि रचों शरीर बनाई।।
कर सेवा माँगों पुनि सोई। तिहुँ पुर जीवित मेरो होई।।
एक पाँव तब सेवा कियऊ। चौंसठ युग लों ठाढ़े रहे ऊ।।

निरंजन ने तीन लोक बना दिये, स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक रच डाले, पर सोचा कि तीन लोक का विस्तार कैसे करूँ! क्योंकि बीज नहीं है, इसलिए शरीरों की रचना भी नहीं हो सकती और फिर यह तो निर्जीव सृष्टि है, इसमें जीव नहीं हैं; जैसे अमर लोक में हंस हैं, ऐसे इसमें नहीं हैं। यह सोच निरंजन ने पुनः एक पाँव पर खड़े होकर शून्य में 64 युग तक परम-पुरुष का ध्यान किया, सोचा कि सजीव तीन लोक मेरा हो जाए यानी अभी तक तीन-लोक की सृष्टि निर्जीव थी।

दयानिधि सतपुरुष साहिब, बस सुसेवा के भये।
बहुरि भाष्यो सहज सेती, कहा अब याचत नये।।
जाहु सहज निरंजन पहँ, देउ जो कुछ माँगई।
करहि रचना पुरुष वचना, छल मता सब त्यागई।।

परम-पुरुष फिर निरंजन की सेवा से अधीन हुए और सहज को उसके पास भेजा।

चले सहज सिरनाय, जबहिं पुरुष आज्ञा कियो।
तहवाँ पहुँचे जाय, जहाँ निरंजन ठाढ़ रहो।।

सहज परम-पुरुष की आज्ञा पाकर निरंजन के पास आए।

देखत सहज धर्म हरषाना। सेवा बस पुरुष तब जाना।।

निरंजन ने जब सहज को आते देखा तो जान गया कि परम-पुरुष सेवा से खुश हो गये हैं।

तबै सहज अस भाषे लीन्हा। सुनहु धर्म तोहि पुरुष सब दीन्हा।।
कूर्म उदर सो जो कछु आवा। सो तोहि देन पुरुष फरमावा।।
तीन लोक राज तोहि दीन्हा। रचना रचहु होहु जनि भीना।।
कहै सहज सुनहु धर्मराया। केहि कारण अब सेवा लाया।।

सहज ने कहा-हे निरंजन! तुम्हें परम-पुरुष ने तीन लोक का राज्य दिया; कूर्म के पेट से जो निकला, वो भी तुमने ले लिया; अब क्यों तप कर रहे हो!

तबै निरंजन विनती लायी। कैसे रचना रचूँ बनायी।।
पुरुषहिं कहो जोरि युग पानी। मैं सेवक दुतिया नहिं जानी।।
पुरुष सो विनती करो हमारा। दीजे खेत बीज निज सारा।।
मैं सेवक दुतिया नहिं जानू। ध्यान पुरुष का निशि दिन आनू।।

निरंजन ने कहा कि बीज ही नहीं है तो सृष्टि कैसे करू! इसलिए बीज दो और जीव भी दो, जिन पर राज्य कर सकूँ।

सहज कह्यो पुनि पुरुषहिं जाई। जस कछु कह्यो निरंजन राई।।

सहज ने परम-पुरुष के पास जाकर निरंजन की प्रार्थना सुना दी।

इच्छा कीन पुरुष तेहि बारा। अष्टंगी कन्या उपचारा।।
अष्ट बाहु कन्या होय आई। बायें अंग सो ठाढ़ रहाई।।
माथ नाई पुरुष सो कहई। अहो पुरुष आज्ञा कस अहई।।

परम-पुरुष ने तब इच्छा करके एक ऐसी कन्या(आद्य-शक्ति) की उत्पत्ति की, जिसकी आठ भुजाएँ थीं। आद्य शक्ति ने परम पुरुष से पूछा कि उसको क्यों बनाया गया है!

तबहीं पुरुष वचन परगासा। पुत्री जाहु धरम के पासा।।
देहुँ वस्तु सो लेहु सम्हारी। रचहु धर्म मिलि उत्पति वारी।।
दीन्हो बीज जीव पुनि सोई। नाम सुहंग जीव कर होई।।
जीव सोहंगम दूसर नाहीं। जीव सो अंश पुरुष को आही।।

परम-पुरुष ने अनन्त आत्माएँ देते हुए कहा कि हे पुत्री! मानसरोवर में निरंजन के पास ये आत्माएँ लेकर जाओ और उसके साथ मिलकर सत्य सृष्टि करो। सोहंग जीव का ही नाम है और यह परम-पुरुष का अंश है।

पुरुष सेवा वश भये तब अष्टगहिं दीन्ह हो।
मानसरोवर जाहु कहिया देहु धर्महिं चीन्ह हो।
अष्टंगी कन्या हती जेहिं रूप शोभा अति बनी।
जाहु कन्या मानसरोवर करहु रचना अति घनी।।

सेवा के वश होकर ही परम-पुरुष ने अष्टंगी को जीव देकर निरंजन के पास मानसरोवर में भेजा।

चौरासी लख जीव, मूल बीज तेहि संग दे।।
रचना रचहु सजीव, कन्या चलि सिर नाय के।।

परम-पुरुष ने आद्य-शक्ति को जीवात्माएँ देते हुए कहा कि सत्य सृष्टि करना।(यानी आत्माओं को शरीरों में डालने की आज्ञा नहीं दी) आद्य-शक्ति परम-पुरुष को प्रणाम कर चल पड़ी।

यह सब दीन्हो आदि कुमारी। मान सरोवर चलि भई नारी।।
ततछिन पुरुष सहज टेरावा। धावत सहज पुरुष पहिं आवा।।
जाही सहज धरम यह कहेहू। दीन्ही वस्तु जस तुम चहेहू।।
मूल बीज तुम पहँ पठवावा। करहु सृष्टि जस तुम मन भावा।।
मानसरोवर जाहि रहाहू। ताते होई हैं सृष्टि उराहू।।

जब आद्य-शक्ति मानसरोवर को चली तो परम पुरुष ने तुरंत सहज को बुलाकर कहा कि निरंजन के पास जाओ और कहो कि जो वस्तु तुमने चाही थी, सो तुम्हें दे दी है, मूल बीज तुम तक पहुँचा दिया है, अब मानसरोवर को जाओ और सृष्टि करो।

चले सहज तहवाँ तब आये। धर्म धीर जहँ ठाढ़ रहाये।।
कहेउ सु वचन पुरुष को जबहीं। धर्मराय सिर नायो तबहीं।।

परम-पुरुष की आज्ञा पाकर सहज निरंजन के पास आए और परम-पुरुष के बचन सुनाए।

पुरुष वचन सुन तबही गाजा। मान सरोवर आन विराजा।।
आवत कामिनि देख्यो जबही। धर्मराय मन हरष्यो तबही।।
कला अनन्त अंत कछु नाहीं। काल मगन ह्वै निरखत ताही।।
निरखत धरम सु भयो अधीरा। अंग अंग सब निरख शरीरा।।
धर्मराय कन्या कह ग्रासा। काल स्वभाव सुनो धर्मदासा।।

परम-पुरुष के वचन सुन निरंजन मानसरोवर में आकर बैठ गया। जब उसने आद्य-शक्ति को आते देखा तो बड़ा खुश हुआ। आद्य-शक्ति अनन्त कला और सैंदर्य से परिपूर्ण थी, सो काल पुरुष उसे देख मग्न हो गया, कामुक हो गया। उसने शक्ति को एक हाथ में पाँव और एक हाथ में शीश की तरफ से पकड़ा और निगल गया। तब से उसका नाम काल पुरुष हुआ अथवा काल निरंजन हुआ।

कीनो ग्रास काल अन्याई। तब कन्या चित विस्मय लाई।।
ततछन कन्या कीन्ह पुकारा। काल निरंजन कीन्ह अहारा।।

जैसे ही निरंजन ने उसे निगला, उसने परम-पुरुष को पुकार की, कहा कि काल-निरंजन ने मुझे खा लिया है।

तबही धर्म सहज लग आई। सहज शून्य तब लीन्ह छुड़ाई।।

फिर निरंजन सहज के पास गया और उसे भी वहाँ से भगा दिया, क्योंकि तप के कारण उसमें ताक़त आ गयी थी।

पुरुष ध्यान कूर्म अनुसारा। मोसन काल कीन्ह अधिकारा।।
तीन शीश मम भच्छन कीन्हो। हो सतपुरुष दया भल चीन्हो।।
यही चरित्र पुरुष भल जानी। दीनहो शाप सो कहों बखानी।।
लच्छ जीव नित ग्रासन करहू। सवा लच्छ नित प्रति बिस्तरहू।।

परम-पुरुष को ध्यान आया कि इसने पहले भी कूर्म का पेट फाड़कर पाँच तत्व का बीज निकाला था और अब इसने आद्य-शक्ति को निगल लिया है। परम-पुरुष को बुरा लगा, उन्होंने निरंजन को शाप दे दिया, कहा कि एक लाख जीवों को तू रोज़ निगलेगा तो भी तेरा पेट नहीं भरेगा और सवा लाख को उत्पन्न करेगा।

पुनि कीन्ह पुरुष तिवान, तिहि छन मेटि डारो काल हो।
कठिन काल कराल जीवन। बहुत करइ बिहाल हो।।
यहि मेटत सबै मिटिहैं, बचन डोल अडोलसां।।

परम-पुरुष ने विचार किया कि मैं काल पुरुष को मिटा देता हूँ, क्योंकि यह तो जीवों को बड़ा कष्ट देगा, पर फिर ध्यान आया कि मैंने तो इसे 17 असंख्य चौकड़ी युग का राज्य दिया है, यदि मिटा दिया तो एक तो मेरा शब्द कट जायेगा और फिर सभी 16 पुत्रों को एक नाल में पिरोया है, यदि एक को मिटाया तो सभी मिट जायेंगे।

डोलै बचन हमार, जो अब मेटा धरम को।
वचन करो प्रतिपाल, देश मोर अब ना लहैं।।

उसे मिटाने से शब्द कट जाता था, इसलिए शाप दिया कि अब मेरे देश में नहीं आ सकेगा, मेरा दर्शन नहीं कर सकेगा।

जोगजीत कहँ तबहि बुलावा। धर्म चरित सब कहि समुझाया।।
जौगजीत तुम बेगि सिधारो। धर्मराय को मारि निकारो।।
मानसरोवर रहन न पावै। अब यहि देस काल नहिं आवै।।
धर्म के उदर माहिं है नारी। तासो कहो निज शब्द सम्हारी।।

उदर फारि के बाहर आवे। कूर्म उदर विदार फल पावै।।
धर्मराय सों कहो विलोई। वहै नारि अब तुम्हरी होई।।
जाकर रहो धर्म वहि देशा। स्वर्ग मृत्यु पाताल नरेशा।।

परम-पुरुष ने योगजीत (कबीर साहिब) को बुलाया। वास्तव में परम-पुरुष खुद ही योगजीत हुए। उन्होंने स्वयं को मथ ज्ञानी पुरुष कबीर साहिब को निकाला और कहा कि निरंजन को मानसरोवर से निकाल दो, अब वो मेरे देश में कभी भी नहीं आयेगा। उसके पेट में आद्य-शक्ति है, उससे कहना कि मेरा ध्यान करके उसके पेट को फाड़ बाहर आ जाए ताकि निरंजन ने जो कूर्म का पेट फाड़ा था, उसे उसका फल मिल जाए और निरंजन से कहना कि वो स्त्री अब तुम्हारी हो गयी, तुमने जहाँ स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक और पाताल लोक की रचना की है, वहीं जाकर रहो।

जोगजीत चल भे सिर नाई। मानसरोवर पहुँचे जाई।।
जोगजीत को देखा जबहीं। अति भो काल भयंकर तबहीं।।
पूछा काल कौन तुम आहू। कौन काज तुम यहाँ सिधाहू।।

परम-पुरुष को प्रणाम कर योगजीत मानसरोवर में आए। जब निरंजन ने योगजीत को देखा तो बड़ा क्रोध किया, भयंकर हो गया, पूछा-कौन हो? और यहाँ क्यों आए हो?

जोगजीत अस कहे पुकारी। अहो धर्म तुम ग्रासेहु नारी।।
आज्ञा पुरुष दीन्ह यह मोही। इहिते बेगि निकारो तोही।।
जोगजीत कन्या को कहिया। नारि काहे उदर महँ रहिया।।
उदर फारि अब आवहु बाहर। पुरुष तेज सुमिरो तोहि ठाहर।।

योगजीत ने कहा कि तुमने आद्य-शक्ति को निगल लिया है, परम-पुरुष की आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ, तुम्हें यहाँ से निकालना है। तब योगजीत ने कन्या से कहा कि इसके पेट में क्यों बैठी हो, परम-पुरुष की सुरति करके इसका पेट फाड़कर बाहर आ जाओ।

सुनिके धर्म क्रोध उर जरेऊ। जोगजीत सो सन्मुख भिरेऊ।।
जोगजीत तब कीन्हे ध्याना। पुरुष प्रताप तेज उर आना।।
पुरुष आज्ञा भई तेहि काला। मारहु सुरति लिलार कराला।।
जोगजीत पुनि तैसो कीन्हा। जस आज्ञा पुरुष तेहि दीन्हा।।

यह सुन निरंजन क्रोधित होकर लड़ने के लिए योगजीत के सम्मुख आया। योगजीत ने तब परम-पुरुष का ध्यान करके उनके तेज को लिया और निरंजन पर सुरति फेंकी, जिससे वो बेहोश होकर गिर पड़ा।

गहि भुजा फटकार दीन्हों, परेउ लोक ते न्यार हो।।
भयो त्रासित पुरुष डरते, बहुरि उठेउ सम्हार हो।।
निरसि कन्या उदर ते, पुनि देख धर्महि अति डरी।।
अब नहिं देखों देस वह, कहो कौन विधि कहँवा परी।।

तब योगजीत ने उसकी भुजा पकड़कर उसे अमर-लोक से नीचे शून्य में फेंक दिया। वहाँ योगजीत के डर से संभल कर उठा और उसके पेट से कन्या बाहर निकल आयी। निरंजन को देख कन्या डरने लगी और सोचने लगी कि यहाँ कैसे आ गयी! अब उस देश में नहीं जा पाऊँगी।

कामिनि रही सकाय, त्रासित काल डर अधिका।
रही सो सीस नवाय, आस पास चितवत खड़ी।।

आद्य शक्ति काल निरंजन से डरने लगी और शीश नवाकर वहीं पास में खड़ी हो गयी।

निरंजन ने कहा

कहे धर्म सुनु आदि कुमारी। अब जनि डरपो त्रास हमारी।।
पुरुष रचा तोहि हमरे काजा। इक मति होय करहु उपराजा।।
हम हैं पुरुष तुमहिं हो नारी। अब जनि डरपो त्रास हमारी।।

निरंजन ने शक्ति से कहा कि हे कुमारी! मुझसे मत डरो; परम-पुरुष ने तुम्हें मेरे काम के लिए रचा है, इसलिए दोनों मिलकर राज्य करते हैं। मैं पुरुष हूँ और तुम मेरी नारी हो; मुझसे मत डरो।

आद्य शक्ति ने कहा

कहे कन्या कैसे बोलहु बानी। भ्राता जेठ प्रथम हम जानी।।
कन्या कहै सुनो हो ताता। ऐसी विधि जनि बोलहु बाता।।
अब मैं पुत्री भई तुम्हारी। ताते उदर माँझ लियो डारी।
जेठ बंधु प्रथमहि के नाता। अब तो अहो हमारे ताता।।
निरमल दृष्टि अब चितवहु मोही। नहिं तो पाप होय अब तोही।।

आद्य शक्ति ने कहा कि यह कैसी बात बोल रहे हो। पहले नाते से तो तुम मेरे बड़े भाई हो चुके हो, क्योंकि परम-पुरुष के बच्चे हैं हम और दूसरे नाते से मैं तुम्हारी पुत्री हो गयी हूँ, क्योंकि तुमने मुझे पेट में डाल लिया था और वहीं से मैं निकली हूँ, इसलिए तुम मेरे पिता हो गये हो। अब तुम मुझे निर्मल दृष्टि से देखो अन्यथा तुम्हें पाप लगेगा।

निरंजन ने कहा

कहे निरंजन सुनो भवानी। यह मैं तोहि कहों सहिदानी।।
पाप पुण्य डर हम नहिं डरता। पाप पुण्य के हमहीं करता।।
पाप पुण्य हमहीं से होई। लेखा मोर न लेहै कोई।।
पाप पुण्य हम करम पसारा। जो बाझे सो होय हमारा।।
ताते तोहि कहों समुझाई। सिख हमार लो सीस चढ़ाई।।
पुरुष दीन तोहि हम कहँ जानी। मानहु कहा हमार भवानी।।

निरंजन ने कहा कि मैं पाप-पुण्य से नहीं डरता हूँ, क्योंकि पाप-पुण्य का कर्ता मैं ही हूँ, मेरे पाप-पुण्य का हिसाब लेने वाला कोई नहीं है और आगे मैं पाप-पुण्य कर्मों का जाल ही फैलाऊँगा और जो इनमें उलझ जायेगा, वो कहीं नहीं जा पायेगा, हमारा ही रहेगा।

विहँसी कन्या सुन अस बाता। इक मति होय दोइ रंगराता।।
हरस वचन बोली मृदु बानी। नारी नीच बुधि रति विधि ठानी।।
रहस वचन सुन धरम हरषाना। भोग करन को मन में आना।।

आद्य शक्ति तब हँसते हुए उसके साथ एकमत हो गयी, उसकी बात मान ली और मीठी बाणी बोलकर गुप्त बात कही और निरंजन के साथ रहने का निश्चय कर लिया।

भग न कन्या के हती। अस चरित कीन्ह निरंजना।
नख घात किये भग द्वार तत छिन, घाट उत्पति गंजना।।
नख रे ष शोनित चला। तिहुँ को सब खास आरंभनी।
आदि उत्पति सुनहु धर्मनि, कोउ नहिं जानत जम मनी।।
त्रियवार कीन्ही रति तबै, भये ब्रह्मा विष्णु महे श हो।
जेठे विधि विष्णु लघु तिहि, तीजे शम्भू सेष हो।।

उत्पति आदि प्रकाश, यह विधि तेहि प्रसंग भो।।
कीन्हो भोग विलास, इक मति कन्या काल ह्वै।।

तेहि पीछे ऐसा भो लेखा। धर्मदास तुम करौ विवेका।।
अग्नि पवन जल महि अकाशा। कूर्म उदर ते भयो प्रकाशा।।

पाँचों अंस ताहि सन लीन्हा। गुण तीनों सीसन सों कीन्हा।।
यहि विधि भये तत्व गुण तीनों। धर्मराय तब रचना कीनो।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि कूर्म जी के पेट से पाँच तत्व निकले थे और उसके तीन शीश निरंजन ने खा लिये थे, उन्हीं से तीन गुण– रजगुण (ब्रह्मा जी), सत्गुण (विष्णु जी), और तमगुण (शिवजी) हुए। पाँच तत्व और तीन गुणों से निरंजन ने सब रचना की।

त्रिदेव की उत्पत्ति

गुन तत सम कर देविहिं दीन्हा। आपन अंस उत्पन कीन्हा।।
बुन्द तीन कन्या भग डारा। ता सँग तीनो अंस सुधारा।।
पाँच तत्व गुण तीनों दीन्हा। यहि विधि जग की रचना कीन्हा।।
प्रथम बुन्द ते ब्रह्मा भयऊ। रज गुण पंच तत्व तेहि दयऊ।।
दूजो बुन्द बिस्नु जो भयऊ। सतगुण पंच तत्व तिन पयऊ।।
तीजे बुन्द रुद्र उत्पाने। तमगुण पंच तत्व तेहि साने।।
पंच तत्व गुण तीन खमीरा। तीनों जन को रच्यो शरीरा।।

तीन गुण और पाँच तत्वों को मिलाकर निरंजन ने अपने पुत्र उत्पन्न किये और इस तरह पाँच तत्व और तीन गुण देकर जगत की रचना की। प्रथम रजगुण के साथ पाँच तत्व दिये, जिससे ब्रह्मा जी हुए और सतगुण के साथ पाँच तत्व दिये तो विष्णु जी हुए और तमगुण के साथ पाँच तत्व देने से शिवजी हुए। इस तरह पाँच तत्व और तीन गुण से तीनों शरीरों की रचना की।

कहै धर्म कामिनि सुन बानी। जो मैं कहूँ लेहू सो मानी।।
जीव बीज आहै तुव पासा। सो ले रचना करहु प्रकाशा।।
कहै निरंजन पुनि सुनु रानी। अब अस करहू आदि भवानी।।
त्रय सुत सौंप तोहि दीना। अब हम पुरुष सेवा चित लीन्हा।।
राज करहु तुम लै तिहुँ वारा। भेद न कहियो काहु हमारा।।
मोर दरश त्रय सुत नहिं पैहैं। जो मुहि खोजत जन्म सिरै हैं।।
ऐसो मता दिढै हो जानी। पुरुष भेद नहिं पावै प्रानी।।
त्रय सुत जबहिं होहिं बुधिवाना। सिंधु मंथन दे पटहु निदाना।।

निरंजन ने कहा कि जीव और बीज तुम्हारे पास हैं और ये तीनों पुत्र भी तुम्हें सौंपता हूँ। अब मैं निराकार रूप में शून्य में समाऊँगा और मन बनकर हर जीव के साथ रहूँगा और तुम तीनों पुत्रों के साथ राज्य करना। निरंजन ने कहा कि तुम मेरा भेद किसी से नहीं कहना, मेरा दर्शन तीनों पुत्रों में से कोई नहीं कर सकेगा, चाहे मुझे खोजते हुए जन्म क्यों न गँवा दें, और मेरा कोई भेद भी न जान पाए। जब ये बड़े हो जाएँ तो इन्हें समुद्र मंथन के लिए भेजना।

मन ही सरूपी देव निरंजन, तोहि रहा भरमाई।
पांच पचीस तीन का पिंजड़ा, जामें तोहि राखा भरमाई॥

निरंजन मन बनकर गुप्त हुआ

कहे उ बहुत बुझाय देविहि, गुप्त भये तब आहि हो।
शून्य गुफहि निवास कीन्हो, भेद लह को ताहि हो।।
वह गुप्त भा पुनि संग सबके, मन निरंजन जानिये।
मन पुरुष ध्यान उच्छेद देवे, आपु परगट आनिये।।

निरंजन गुप्त होकर शून्य में समा गया और मन रूप में सबके साथ हो गया। यही मन परम पुरुष का ध्यान नहीं करने देता है।

जीव सतावे काल, नाना कर्म लगाय के ।
आप चलावे चाल, कष्ट देय पुनि जीव को।।

काल स्वयं ही चाल चलकर जीवों से कर्म करवाता है और फिर स्वयं ही उन्हें कष्ट देता है।

गुप्त भयो है संग सबके।
मन ही निरंजन जानिये॥

त्रिदेवों ने किया समुद्र मंथन

त्रय बालक जब भये सयाने। पठये जननी सिंधु मथाने।।
बालक मातै खेल खिलारी। सिंधु मंथन नहिं गयै उखरारी।।
तेहि अन्तर इक भयो तमासा। सो चरित्र बूझो धर्मदासा।।
धान्यो योग निरंजन राई। पवन अरंभ कीन्ह बहुताई।।
त्यागो पवन रहित पुनि जबही। निकसेउ वेद स्वास संग तबही।।
स्वास संग आयेउ सो वेदा। बिरला जन कोई जाने भेदा।।
अस्तुति कीन्ह वेद पुनि ताहां। आज्ञा का मोहि निरगुन नाहां।।
कह्यो जाय करु सिंधु निवासा। जेहि भेंटे जैहौ तिहि पासा।।
उठी अवाज़ रूप नहिं देखा। जोति अगम दिखलावत भेखा।।
चलेउ वेद तहँवा को जाई। जहँवा सिंधु रचा धर्मराई।।
पहुँचे वेद तब सिंधु मँझारा। धर्मराय तब युक्ति विचारा।।
गुप्त ध्यान देविहिं समुझावा। सिंधु मंथन कहँ कस विलमावा।।
पठवहु बेगि सिंधु त्रय बारा। दिठकै सोचहु बचन हमारा।।
बहुरि आप पुनि सिंधु समाना। देवी कीन्ह मथन अनुमाना।।
तिहुँ बालक को कहा समुझायी। आसिष दे पुनि तहाँ पठायी।।
पैहो वस्तु सिंधु के माहीं। जाहु बेगि तीनों सुत ताही।।
चलिभौ ब्रह्मा मान सिखाही। दोइ लहुरा पुनि पाछे जाई।।

जब तीनों बालक कुछ बड़े हुए तो माता ने कहा कि समुद्र मंथन को जाओ; पर बच्चे खेलने में मस्त रहे, वहाँ नहीं गये। इतने में पहले निरंजन ने तमाशा किया, उसने योग से पवन उत्पन्न की और जब उसका त्याग किया तो स्वांस के साथ वेद बाहर निकले यानी निरंजन ने वायु में वेद के शब्द किये, कोई पुस्तक लिखी हुई नहीं थी। इस भेद को कोई

बिरला ही जानता है। वेद ने निरंजन की स्तुति की और आज्ञा माँगी। निरंजन ने कहा–जाओ समुद्र में समा जाओ,जब मंथन हो तब जिसे मिलो, उसी के पास चले जाना। निरंजन ने आकाशवानी की, ज्योति दिखाई, पर वेद ने उसका रूप नहीं देखा, इसलिए वेद निराकार के लिए भी कहता है कि उसका पूरा भेद नहीं पा रहा हूँ।.... तो जब वेद चले गये तो निरंजन ने तेज उत्पन्न करके उसे भी समुद्र में समाने को कहा; फिर तेज के बाद विष उत्पन्न करके उसे भी समुद्र में समाने भेज दिया। वेद जब समुद्र मध्य आकर समा गये तो निरंजन ने ध्यान में आद्य शक्ति को कहा कि समुद्र मंथन में बिलम्ब क्यों हो रहा है, हमारे वचन पर ध्यान दो और जल्दी से तीनों पुत्रों को समझाकर और आशीर्वाद देकर समुद्र मंथन के लिए भेजो। तब आद्य शक्ति ने तीनों को समझाकर और आशीर्वाद देकर समुद्र मंथन के लिए भेजा, कहा कि समुद्र के अन्दर कोई वस्तु है, जल्दी जाओ। ब्रह्मा मान सहित आगे–2 चले और पीछे–2 दोनों भाई विष्णु और शिवजी भी चले।

गये सिंधु के पास, भये ठाढ तीनो जने।
युक्ति मथन परकास, एक एक को निरखहीं।।

तीनों पुत्र समुद्र के पास जाकर खड़े हो गये और एक दूसरे को देखते हुए मंथन पर विचार करने लगे।

तीनों कीन्ह मंथन तब जाई। तीन वस्तु तीनों जन पाई।।
ब्रह्मा वेद तेज तेहि छोटा। लहुरा तासु मिले विष खोटा।।
भेट वस्तु त्रय तीनों भाई। चलि भये हर्ष कहत जहँ माई।।
माता पहँ आये त्रय बारा। निज–2 वस्तु प्रगट अनुसारा।।
माता आज्ञा कीन्ह प्रकासा। राखु वस्तु तुम निज–2 पासा।।

जब मंथन किया तो तीनों को तीन चीज़ें मिली। ब्रह्मा को वेद मिले, विष्णु को तेज मिला और शिवजी को विष मिला। तीनों चीज़ें लेकर तीनों भाई बड़े खुश होकर माता के पास आए। माता ने कहा कि जो चीज़े जिसे मिली है, वो अपने पास रख ले।

पुनि तुम मथहु सिंधु कहँ जाई। जो जिहि मिले लेहु सो भाई।।
कीन्ह चरित अस आदि भवानी। कन्या तीन कीन्ह उत्पानी।।
कन्या तीन उत्पान्यो जबहीं। अंस वारि महँ नायो सबहीं।।
पठयो सिंधु माहिं पुनि ताहीं। त्रय सुत मरम सो जानत नाहीं।।
पुनि तिन मंथन सिंधु को कीन्हा। भेंट्यो कन्या हर्षित ह्वै लीन्हा।।
कन्या तीनहु लीन्हे साथा। आ जननी कहँ नायउ माथा।।
सब माता के आगे कीन्हा। माता बाँटि तिन्हन कहँ दीन्हा।।
माता कहे सुनहु सुत मोरा। यह तो काज भये सब तोरा।।
एक एक बाँटि तीन्हु को दीन्हा। करहु भोग अस आज्ञा कीन्हा।।
सावित्री ब्रह्मा तुम लेऊ। है लक्ष्मी विष्णु कहँ देऊ।।
पारवती शंकर कहँ दीन्ही। ऐसी माता आज्ञा कीन्ही।।
तीनउ जन लीन्ही सिर नाई। दीन्ह अद्या जस भाग लगाई।।
पाई कामिनी भये अनंदा। जस चकोर पाये निशिचदा।।
काम वसी भए तीनों भाई। देव दैत दोनों उपजाई।।
धरमदास परखो यह बाता। नारी भयी हती सो माता।।

माता ने पुत्रों से कहा कि पुनः समुद्र मंथन के लिए जाओ और जो जिसे मिले, वो उसे अपने पास रख ले। इतने में शक्ति ने तीन कन्याओं की उत्पत्ति की और उन्हें भी समुद्र में समाने को कहा। तीनों बेटों में से किसी को भी इसका भेद मालूम न चला। जब तीनों ने पुनः समुद्र मंथन किया तो तीनों कन्याएँ मिलीं। तीनों कन्याएँ लेकर तीनों माता के पास आए। माता ने कहा कि यह सब तुम्हारा काम है, इसलिए एक-एक कन्या सबको दे दी और एक दूजे के संग रहने को कहा। सावित्री ब्रह्मा जी को दी, लक्ष्मी विष्णु जी को और पार्वती शंकर जी को दी। स्त्री पाकर तीनों भाई बड़े खुश हुए। जैसे चकोर को रात्रि का चाँद मिल गया

हो, ऐसे ही सब उनमें खो गये। फिर तीनों भाई काम के वशीभूत हुए और उनमें ही रम गए। जिससे देवताओं और दैत्यों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा जी और विष्णु जी से देवताओं की और शिवजी से राक्षसों की उत्पत्ति हुई। इसलिए आगे चलकर शिवजी ने ही राक्षसों को वरदान भी दिये।

माता बहुरि कहे समुझायी। अब फिर सिंधु मथो तुम जाई।।
जो जेहि मिलै लेहु सो जाई। अब जनि करो विलंब तुम भाई।।

माता ने पुत्रों से कहा कि अब फिर से समुद्र मंथन के लिए जाओ और अबकी बार विलंब न करना।

त्रय सुत चले माथ नवायी। जो कछु कहेउ करब हम जायी।।
मथ्यो सिंधु कछु विलंब न कीना। निकसे चौदह रतन सो लीन्हा।।
चौदह रतन की निकसी खानी। ले माता पहँ पहुँचे आनी।।
तीनहु बन्धु हरषित ह्वै लीन्हा। विस्नु सुधा पायउ हर विष दीन्हा।।

तीनों माता को प्रणाम करके पुनः मंथन के लिए चले और अबकी बार 14 रतन की खानी निकली और उन्हें लेकर माता के पास आए। तब उसमें से विष्णु जी को अमृत और शिवजी को विष दिया गया।

ब्रह्मा को दिया वेद ने रहस्य

ब्रह्मा वेद पढ़न तब लागा। पढ़त वेद तब भा अनुरागा।।
कहे वेद पुरुष इक आही। है निराकार रूप न ताही।।
शून्य माहिं वह जोत दिखावे। चितवत देह दृष्टि नहिं आवे।।
स्वर्ग सीस पग आहि पताला। तेहि मत ब्रह्मा भौ मतवाला।।
चतुरानन कहे विष्णु बुझावा। आहि पुरुष मोहिं वेद लखावा।।
पुनि ब्रह्मा शिवसों अस कहईष वेद मंथन पुरुष इक अहई।।
अहै पुरुष इक वेद बतावा। वेद कहे हम भेद न पावा।।

अब ब्रह्मा वेद पढ़ने लगा। वेद में उसने जाना कि एक पुरुष है, जो निराकार है, जिसका कोई रूप नहीं है, जो शून्य में जोत दिखाता है और पाताल तक उसके पाँव हैं। (वेद में निरंजन ने अपनी ही बात की थी, परम पुरुष का भेद नहीं दिया) यह पढ़ ब्रह्मा मतवाला होकर विष्णु के पास आया और उसे कहा कि मुझे वेद कह रहा है कि एक पुरुष है।

तब ब्रह्मा शिवजी के पास आया और उसे भी यह बात बतायी। ब्रह्मा ने कहा कि वेद का मंथन करने से पता चलता है कि एक पुरुष है, पर वेद कह रहा है कि मैं उसका भेद नहीं जान पा रहा हूँ।

तब ब्रह्मा माता पहँ आवा। करि प्रणाम तब टेके पाँवा।।
हे माता मोहि वेद लखावा। सिरजनहार और बतलावा।।

तब ब्रह्मा माता के पास आया और प्रणाम करके कहा कि वेद कह रहा है कि सृष्टि की रचना करने वाला कोई और (निराकार) है।

ब्रह्मा ने कहा

ब्रह्मा कहे जननी सुनो, कहहु कहा कंत तुम्हार है।
कीजै कृपा जनि मोहि दुरावो, कहाँ पिता हमार है।।

ब्रह्मा ने कहा कि तुम्हारा पति कौन है, कृपा करके सच-2 कहो, छिपाओ नहीं, बताओ कि हमारा पिता कहाँ है !

शक्ति ने कहा

कहे जननि सुनो ब्रह्मा, कोउ नहीं जनक तुम्हार हो।
हमहिते भई सबे उत्पत्ति, हमहिं सब कीन सम्हार हो।।

माता ने कहा–हे ब्रह्मा ! तुम्हारा पिता कोई नहीं है, मुझसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, इसलिए मैं ही तुम्हारी माता हूँ और मैं ही तुम्हारा पिता हूँ।

ब्रह्मा ने कहा

ब्रह्मा कहे पुकार, सुनु जननि तैं चित्त दे।
कहत वेद निरुवार, पुरुष एक सो गुप्त है ।।

ब्रह्मा ने कहा–हे माता ! ध्यान से सुनो, वाणी में आ रहा है कि एक पुरुष है, जो गुप्त है। ब्रह्मा ने दिखाया माता को।

शक्ति ने कहा

कहे अद्या सुनु ब्रह्म कुमारा। मोसे नहीं कोउ स्रष्टा न्यारा।।
स्वर्ग मृत्यु पाताल बनाई। सात समुद्र हम निरमाई।।

शक्ति ने कहा कि मैं ही स्रष्टा हूँ, मैंने ही स्वर्ग, पाताल, मृत्यु आदि लोक बनाए हैं, मैंने ही समुद्र बनाया है, मेरे अलावा और कोई नहीं है।

ब्रह्मा ने कहा

माना वचन तुमहि सब कीन्हा। प्रथम गुप्त तुम कस रख लीन्हा।।
जबै वेद मुहि कहै बुझाई। अलख निरंजन पुरुष बताई।।
अब तुम आप बनो करतारा। प्रथम काहे न किया बिचारा।।
जो तुम वेद आप कथ राखा। सो कस तुम अलख निरंजन भाखा।।

आपे आप आप निरमाई। काहे न कथन कीन तुम माई।।
अब मोसन तुम छल जनि करहू। साँचे साँच सब कहि उच्चरहू।।

ब्रह्मा ने कहा कि माना तुम्हीं ने सब कुछ बनाया, पर यदि ऐसा था तो पहले हमसे क्यों नहीं कहा, छिपाए क्यों रखा और जब वेद मुझसे कह रहा है कि एक पुरुष है, निरंजन है, निराकार है, दिखता नहीं है तो तुम कह रही हो कि मैं ही सब कुछ हूँ, सब कुछ मैंने ही रचा है। अच्छा, यदि तुमने ही सब कुछ रचा तो वेद के शब्द भी तुम्हारे ही होंगे, फिर उसमें अलख निरंजन की बात की! इसलिए मुझसे छल मत करो और सच-2 कहो।

शक्ति ने कहा

जब ब्रह्मा यहि विधि हठ ठाना। तब अद्या मन कीन्ह तिवाना।।
केहि विधि यहि कहूँ समझाई। विधि नहिं मानत मोर बड़ाई।।
जो यहि कहौं निरंजन बाता। केहि विधि समझे यह विख्याता।।
प्रथम कह्यो निरंजन राई। मोर दरश काहू नहिं पाई।।
अबै जो यही अलख लखावो। कौनी विधि ताको दिखलावों।।
अब विचार पुनि ब्रह्मै समझावा। अलख निरंजन नहिं दरस दिखावा।।

जब ब्रह्मा ने जिद्द की तो शक्ति ने मन में विचार किया कि यह तो मुझे सृष्टा मान ही नहीं रहा है, इसे कैसे समझाऊँ! यदि इसे निरंजन की बात कहूँ तो यह कैसे समझेगा! क्योंकि निरंजन ने तो कहा था कि उसे कोई देख नहीं पायेगा, फिर यदि यह कहेगा कि दिखाओ तो कैसे दिखाऊँगी! यह विचार कर शक्ति ने उससे कहा कि वो किसी को दिखता नहीं है।

ब्रह्मा ने कहा

ब्रह्मा कहे मोहिं ठौर बतावो। आगा पीछा जनि तुम लावो।।
मैं ना मानो तम्हरी बाता। ऐसी बात न मोहि सुहाता।।

प्रथम तुम मुहि दीन भुलावा। अब तुम कहो न दरस दिखावा।।
तासु दरस न पैहो पूता। ऐसी बात कहो अजगूता।।

ब्रह्मा ने कहा कि मैं नहीं मानूँगा, मुझे बताओ कि वो कहाँ है, क्योंकि पहले भी तुमने कहा कि नहीं है, फिर कहती हो कि दिखाई नहीं देता।

शक्ति ने कहा

कहे जननी सुनो ब्रह्मा, कहों तोसों सत्त ही।।
सात स्वर्ग है माथ ताको, चरण पताल सप्त ही।।

शक्ति ने कहा–हे ब्रह्मा! मैं तुमसे सच कहती हूँ, सात स्वर्ग तक उसका मस्तक है और सात पाताल तक उसके चरण हैं।

लेहु पुष्प तुम हाथ, जो इच्छा तिहि दरश की।
जाय नवओ माथ, ब्रह्मा चलै शिर नाइ कै।।

माता ने उसे फूल देते हुए कहा कि यदि तुम्हें पिता दर्शन की इच्छा है तो यह फूल लो और जाकर माथा टेकना और फूल चढ़ाना। तब ब्रह्मा फूल लेकर आकाश में पिता की खोज में चला।

ब्रह्मा गये आकाश में

जननी गुन्यो वचन चित माहीं। मोरि कही यह मानत नाहीं।।
या कहँ वेद दीन्ह उपदेसा। पै दरस तै नहिं पावे भेसा।।
कह अष्टंगी सुनो रे बारा। अलख निरंजन पिता तुम्हारा।।
तासु दरस नहिं पैहो पूता। यह मैं बचन कहौं निज गूता।।

शक्ति ने मन में विचार किया कि ब्रह्मा मेरी बात नहीं मान रहा है, क्योंकि वेद ने इसे उपदेश किया है। तब अष्टंगी ने कहा कि अलख निरंजन तुम्हारा पिता है, पर तुम उसका दर्शन नहीं पा सकोगे।

ब्रह्मा सुनि व्याकुल ह्वै धावा। परसन सीस ध्यान हिय लावा।।
ब्रह्मा चले जननी सिर नाई। सीर परसि आवों तोहि ठाई।।
तुरतहि ब्रह्मा दीन्ह रिंगायी। उत्तर दिशा बेगि चलि जायी।।

यह सुन ब्रह्मा व्याकुल होकर दौड़ा, माता से कहा कि पिता के शीश के दर्शन करके फिर तेरे पास आऊँगा और यह कह वह उत्तर दिशा की ओर चला गया।

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहैं कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव॥

नहीं पहुँच पाये विष्णु

आज्ञा माँगि विष्णु चले बाला। पिता दरश को चले पताला।।
इत उत चितय महे स न डोला। सेवा करत कछू नहिं बोला।।
तेहि शिव मन अस चितं अभावा। सेवा करन जननि चित लावा।।
यहि विधि बहुत दिवस चलि गयऊ। माता सोच पुत्र कस कियऊ।।

विष्णु जी भी आज्ञा माँगकर पिता के दर्शन को पाताल में चले गये। पर शिवजी कहीं नहीं गये; वे माता की सेवा में लगे रहे। इस तरह बहुत दिन बीत गये, माता ने सोचा कि पुत्रों ने यह क्या किया।

प्रथम विष्णु जननी ढिग आये। अपनी कथा कहि समुझाये।।

सबसे पहले विष्णु लौटकर माता के पास आए और सच्ची-2 बात बता दी कि मैं पिता के चरण नहीं देख सका।

सुनि हर्षित भइ आदि कुमारी। लीन्ह विष्णु कहँ निकट दुलारी।।
चूमेउ बदन सीस दियो हाथा। सत्य सत्य बोलेउ सुत बाता।।

विष्णु की बात सुन शक्ति ने उसे आशीर्वाद दिया और उसका मुख चूमा, उसे प्यार किया, कहा–तुमने सत्य बोला है।

पुनि कह माता विष्णु दुलारा। सुनहु पुत्र इक वचन हमारा।।
सत्य सत्य तुम कहो बुझाई। पितु पद परसन जब गै भाई।।
प्रथम हु तो तुम गौर शरीरा। कारण कौन श्याम भए धीरा।।

माता ने विष्णु से कहा–तुम सत्य बोलो कि तुम पिता के चरण स्पर्श नहीं कर सके, पर यह बताओ कि पहले तो तुम गौर वर्ण थे, अब श्याम वर्ण कैसे हो गये!

आज्ञा पाय हम तत्काला। पितु पद परसन चले पताला।।
अक्षत पुहुप लीन्ह कर माहाँ। चले पताल पंथ मग जाहाँ।।

पहुँचि शेषनाग पहँ गयऊ। विष के तेज हम अलसयऊ।।
भयो श्याम विष तेज समावा। भइ अवाज अस वचन सुनावा।।
अहो विष्णु माता पहँ जायी। बचन सत्य कहियो समझायी।
सतयुग त्रेता जैहै जबही। द्वापर ह्वै चौथा पद तबही।।
तब तुम हौहु कृष्ण अवतारा। लैहो ओयल सो कही विचारा।।
नाथहु नाग कलिंदी जाई। अब तुम जाहु विलंब न लाई।।
पहुँचे हम तब ही तुव पासा। कीन्हे उ सत्य वचन परकासा।।
भेटे उ नाहिं माहि पद ताता। विष ज्वाला साँवले भो गाता।।
व्याकुल भयो तबै फिरि आयो। पितु पद दर्शन मैं नहिं पायो।।

विष्णु ने कहा कि तुम्हारी आज्ञा पाकर जब फूल लेकर मैं पाताल लोक में गया तो रास्ते में शेषनाग मिले, उनके विष के प्रभाव से मैं अचेत हो गया और मेरा वर्ण श्याम हो गया, तब शेषनाग ने कहा कि हे विष्णु! माता के पास वापिस लौट जाओ और सत्य कहना। उसने कहा कि सतयुग और त्रेता युग बीत जायेंगे तो द्वापर युग आयेगा, तब तुम्हारा कृष्णावतार होगा, मुझे नाथना, पर अब जल्दी से लौट जाओ। तब हम तुम्हारे पास आ गये और पिता के चरणों का दर्शन नहीं कर सके। (शेषनाग कालीनाग के रूप में यमुना में रहता था।)

ब्रह्मा को लेकर आद्य-शक्ति व्याकुल हुई

धर्मदास ने पूछा

कहे धरमनि यह संशय बीती। साहब कहहु ब्रह्मा की रीती।।
पिता सीस तिन परसन कीन्हा। कि होय निरास पीछे पग दीन्हा।।

धर्मदास जी ने साहिब से पूछा कि ब्रह्मा के साथ क्या हुआ! क्या उसने पिता के शीश का स्पर्श किया या फिर निराश होकर लौट गया!

साहिब ने कहा

धर्मदास मुहि अति प्रिय अहहु। कहो सँदेस परखि दृढ़ गहहु।।
चलत ब्रह्मा तब वार न लावा। पिता दरस कहँ अति मन भावा।।
तेहि स्थान पहुँचिगै जाई। नहिं तहँ रबि ससि शून्य रहाई।।
बहु विधि अस्तुत करे बनायी। ज्योति प्रभाव ध्यान तहँ लाई।।
ऐसे बहु दिन गये बितायी। नहिं पायो ब्रह्मा दरश पितायी।।
शून्य ध्यान युग चार गमाना। पिता दरस अजहूँ नहिं पावा।।

साहिब ने कहा–हे धरमदास! तुम मुझे बहुत प्रिय हो, अब आगे की बात कहता हूँ, उसे जानो। कहा–ब्रह्मा के दिल में पिता के दर्शन की चाह थी, उसने जाते हुए समय नहीं लगाया। एक स्थान पर पहुँचा तो वहाँ सूर्य, चाँद आदि नहीं थे, शून्य स्थान था। वहाँ ब्रह्मा ध्यान लगाकर बैठ गया और पिता की बहुत भांति से स्तुति करने लगा। ऐसे में बहुत समय

व्यतीत हो गया, पर ब्रह्मा को पिता के दर्शन नहीं हुए। चार युग उसने ध्यान में गँवा दिये, पर दर्शन नहीं पा सका।

ब्रह्मा तात दरश नहीं पाया। शून्य ध्यान महँ बहु जाया।।
माता चिन्ता करत मन माहाँ। जेठ पुत्र ब्रह्मा रहु काहाँ।।
किहि विधि रचना रचहु बनाई। ब्रह्मा आवे कौन उपाई।।

इधर शून्य में ध्यान मग्न ब्रह्मा को युग बीत गये, पर पिता का दर्शन न हुआ और उधर शक्ति को चिंता हुई कि उसका बड़ा बेटा कहाँ रह गया, क्योंकि सृष्टि की रचना जो करनी थी, सो उसने सोचा कि ब्रह्मा को कैसे बुलाया जाए!

सार शब्द सर्व से न्यारा, भेद न पावे कोई।
चार वेद में ब्रह्मा भूले, आदि नाम न पाई॥

ब्रह्मा को लाने चली गायत्री

उबटि शरीर मैल गहि काढ़ी। पुत्री रूप कीन्ह रचि ठाढी।।
शक्ति अंश निज ताहि मिलावा। नाम गायत्री ताहि धरावा।।
गायत्री मातहि सिर नावा। चरन चूम निज सीस चढ़ावा।।

तब शक्ति ने शरीर से मैल निकालकर गायत्री नामक कन्या की उत्पत्ति की, उसमें अपना अंश मिलाया। गायत्री ने माता के चरणों में शीश नमाकर उसके चरणों को चूमा।

गायत्री ने पूछा

गायत्री विनवै कर जोरी। सुनु जननी इक विनती मोरी।।
कौन काज मो कहँ निरमाई। कहो बचन लेउँ सीस चढ़ाई।।

गायत्री ने माता से पूछा कि उसकी उत्पत्ति क्यों की गयी है !

कहे अद्या पुत्री सुनु बाता। ब्रह्मा आहि जेठहि तुव भ्राता।।
पिता दरश कहँ गयो अकाशा। आनौ ताहि वचन परगासा।।
दरश तात कर वह नहिं पावे। खोजत खोजत जनम गमावे।।
जौने विधि ते इहँवा आई। करो जाय तुम तौन उपाई।।

आद्य शक्ति ने कहा–हे पुत्री ! तम्हारा बड़ा भाई ब्रह्मा पिता का दर्शन करने आकाश को गया है, वो पिता का दर्शन नहीं पा सकेगा और खोजते –2 जन्म गँवा रहा है, इसलिए तुम जाओ और ऐसा उपाय करो जिससे वो यहाँ वापिस आ जाए।

चलि गायत्री मारग आई। जननी वचन प्रीति चित लाई।।
चलत भई मारग सुकुमारी। जननी वचन ध्यान उर धारी।।

गायत्री माता के वचनों को ध्यान से सुन हृदय में धारण कर चल पड़ी।

जाय देख्यो चतुरमुख कहँ, नाहिं पलक उघारई।
कछुक दिन सो रही तहँवा, बहुरि युक्ति विचारई।।
कौन विधि यह जागिहै, अब करों कौन उपाय हो।
मन गुनन सोचे बहुत विधि, ध्यान जननी लाय हो।।

गायत्री ने जाकर देखा कि ब्रह्मा ध्यान मगन है, आँखे बंद किये हुए है, खोलता नहीं है। उसने कुछ दिन तक तो वहीं इंतजार किया, पर जब देखा कि यह जग नहीं रहा है तो विचार किया कि इसे किस तरह जगाऊँ ! यह सोच उसने अद्या का ध्यान किया।

अद्या आयसु पाय, गायत्री तब ध्यान महँ।।
निज कर परसहु, ब्रह्मा तबही जागिहैं।।

अद्या ने कहा कि अपने हाथों से उसके चरण को छुओ, तभी वो जागेगा।

गायत्री पुनि कीन्ही तैसी। माता युक्ति बतायी जैसी।।
गायत्री तब चित्त लगाई। चरण कमल कहँ परसेउ जायी।।

गायत्री ने वैसा ही किया, उसके चरणों को स्पर्श किया।

ब्रह्मा जाग ध्यान मन डोला। व्याकुल भयो बचन तब बोला।।
कवन अहै पापिन अपराधी। कहा छुड़ायहु मोरि समाधी।।
शाप देहुँ तोकहँ मैं जानी। पिता ध्यान मोहि खंड्यो आनी।।

ब्रह्मा ध्यान से जागा और व्याकुल होकर कहा कि मैं पिता के ध्यान में था; ऐसा कौन पापी है, जिसने मेरी समाधि भंग की है, मैं उसे शाप दे दूँगा।

गायत्री ने कहा

कहि गायत्री मोहि न पापा। बूझि लेहु तब देहहु शापा।।
कहों तोहि सो सांची बाता। तोहि लेन पठयी तुव माता।।
चलहु वेगि जनि लावहु वारे। तुम बिन रचना को बिस्तारे।।

ब्रह्मा ने कहा

ब्रह्मा कहे कौन विधि जाऊँ ।
पिता दरस अजहूँ नहिं पाऊँ ।।

गायत्री ने कहा

गायत्री कह दरस न पैहो।
बेगि चलहु नहिं तो पछतैहो।।

ब्रह्मा ने कहा

ब्रह्मा कहै देहु तुम साखी। परस्यो सीस देख मैं आँखी।।
ऐसे कहो मातु समुझायी। तो तुम्हरे संग हम चलि जायी।।

गायत्री ने कहा

कह गायत्री सुन श्रुत धारी। हम नहिं मिथ्या बचन उचारी।।
जो मम स्वारथ पुरवहु भाई। तो हम मिथ्या कहब बनायी।।

ब्रह्मा ने कहा

कह ब्रह्मा नहिं लखी कहानी।
कहौ बुझाय प्रगट की बानी।।

गायत्री ने कहा

कह गायत्री देहु रति मोहि।
तो कह झूठ जिताऊँ तोहि।।

सुन ब्रह्मा चित करे विचारा। अब का यत्न करहुँ इहि बारा।।
ब्रह्मा ने सुनकर विचार किया कि अब क्या करूँ!
जो विमुख या कह करों, अब तो नहिं बनआवई।

साखि तो यह देय नाहिं , जननी मोहि लजावई ।।
यहाँ नाहिं पिता पायो, भयो न एको काज हो।

पाप सोचत नहिं बनै, अब करौं रति विधि साज हो ।।
कियो भोग रति रंग, विसर्‌यो सो मन दरश का।।

दोउ कहँ बढ़्यो उमंग, छल मति बुद्धि प्रकाश किये ।।
कह ब्रह्मा चल जननी पासा। तब गायत्री वचन प्रकाशा।।
औरौ करौ युक्ति इक ठानी। दूसरी साखि लेहु उत्पानी।।
ब्रह्मा कहे भली है बाता। करहु सोई जेहि मानै माता।।
तब गायत्री यतन बिचारा। देह मैल गहि कीन्ह नियारा।।
कन्या रचि निज अंश मिलावा। नाम सावित्री तासु धरावा।।

गायत्री तिहि कह समुझावा। कहियो दरस ब्रह्मा पितु पावा।।
कह सावित्री हम नहिं जानी। झूठी साख दै आपनि हानि।।
यह सुन दोउ कहँ चिंता व्यापा। यह तो भयो कठिन संतापा।।
गायत्री बहु विधि समझायी। सावित्री के मन नहिं आयी।
पुनि गायत्री कहा बुझायी। तब सावित्री बचन सुनायी।।
ब्रह्मा कर मोसों रति साजा। तो मैं झूठ कहों यहि काजा।।

गायत्री ब्रह्माहिं समुझावा। दै रति या कहूँ काज बनावा।।
ब्रह्मा रति सावित्रीहिं दीन्हा। पाप मोट आपन शिर लीन्हा।।
सावित्री कर दूसर नाऊँ। कहि पुहपावति वचन सुनाऊँ।।

सावित्री कर दूसर नाऊँ। कहि पुहपावति वचन सुनाऊँ।।
तीनों मिलि के चलि भे तहँवा। कन्या आदि कुमारी जहवाँ।।

सावित्री ने कहा कि उसे पुहुपावती नाम से पुकारा जाए। अब तीनों माता के पास आए।

करि प्रणाम सम्मुख रहे जाई। माता सब पूछी कुशलाई।।

कहु ब्रह्मा पितु दरसन पाये। दूसरि नारि कहाँ से लाये।।

तीनों ने माता के सम्मुख जाकर प्रणाम किया। माता ने कुशल पूछी, और कहा–हे ब्रह्मा! क्या तुमने पिता का दर्शन पाया और यह दूसरी नारी कहाँ से लाए!

ब्रह्मा ने कहा

कह ब्रह्मा दोऊ हैं साखी। परस्यो सीस देख इन आँखी।।

ब्रह्मा ने माता से कहा कि ये दोनों गवाह हैं कि मैंने पिता के दर्शन किये और उनके शीश का स्पर्श किया।

माता ने गायत्री से पूछा

तब माता बूझे अनुसारी। कछु गायत्री वचन विचारी।।

तुम देखा इन दर्शन पावा। कहो सत्य दर्शन परभावा।।

माता ने गायत्री से पूछा कि कहो, क्या ब्रह्मा ने दर्शन किये!

गायत्री ने कहा

तब गायत्री बचन सुनावा। ब्रह्मा दर्श सीस पितु पावा।।

मैं देखा इन परसेउ शीशा। ब्रह्माहि मिले देव जगदीशा।।

गायत्री ने झूठी गवाही देते हुए कहा कि ब्रह्मा ने पिता के दर्शन किये, मैंने देखा कि इसने पिता के शीश को स्पर्श भी किया।

लेइ पुहुप परसेउ सीस पितु, इन दृष्टि मैं देखत रही।।

जल ढार पुहुप चढ़ाय दीन्ह, हे जननि यह है सही।।

पुहुपते पुहुपावती भयी, प्रगट ताही ठामते।।

इनहु दरसन लह्यो पितु को, पूछहू इहि पुहुपावती।।

सबही साँच मैं तोसो कहूँ, नहिं झूठ है एको रती।।

गायत्री ने कहा कि मैंने देखा, ब्रह्मा ने पिता के शीश को स्पर्श कर वहाँ फूल चढ़ाया और उसी से यह पुहुपावती (पंपावती) नामक कन्या उत्पन्न हुई। यह बिलकुल सच है, मैं थोड़ा सा भी झूठ नहीं बोल रही हूँ, यदि तुम्हें यकीन न हो तो पंपावती से ही पूछ लो।

माता ने पुहुपावती से पूछा

कहु पुहुपावती मोहि, दरश कथा निरवार के ।।
यह मैं पूछों तोहि, किमि ब्रह्मा दरसन किये।।

अद्या शक्ति ने पुहुपावती से कहा कि मैं तुमसे पूछती हूँ, बताओ क्या ब्रह्मा ने पिता के दर्शन किये?

पुहुपावती ने कहा

पुहुपावती बचन तब बोली। माता सत्य बचन नहिं डोली।।
दर्शन सीस लह्यो चतुरानन। चढ़े सीस यह धर निश्चय मन।।

पुहुपावती ने भी झूठी गवाही देते हुए कहा कि ब्रह्मा ने पिता के शीश को देखा।

साख सुनत अद्या अकुलानी। भा अचरज यह मर्म न जानी।।

गवाही सुनकर शक्ति व्याकुल हुई, उसे अचरज हुआ कि यह कैसे हुआ! क्योंकि निरंजन ने तो कहा था कि वो किसी को दिखेगा नहीं। अद्या को रहस्य का पता न चला कि सब झूठ बोल रहे हैं।

काल जो कहिये अलख निरंजन, चारों वेदन गाई हो।
यह मत से सब दुनियां उरझी, पाप पुण्य भुगताई हो॥

शाप से ग्रसित हुए सब

जब तीनों ने झूठ बोला तो अद्या शक्ति चिंतित हुई, उसने ध्यान में निरंजन से पूछा–

निरंजन ने कहा

अलख निरंजन अस प्रण भाखी। मोकहँ कोउ न देखै आँखी।।
ये तीनहुँ कस कहहिं लबारी। अलख निरंजन कहहु सम्हारी।।
ध्यान कीन्ह अष्टंगी तेहि छन। ध्यान माहिं अस कह्यो निरंजन।।

आद्य शक्ति ने तब ध्यान में निरंजन से पूछा कि क्या इन्होंने तुम्हारा दर्शन किया! निरंजन ने भी ध्यान में कहा कि ये झूठ बोल रहे हैं, मुझे किसी ने नहीं देखा।

ब्रह्मा मोर दरश नहिं पाया। झूठी साखि इन आय दिवाया।।
तीनों मिथ्या कहे बनाई। जनि मानहु ये हैं लबराई।।

निरंजन ने कहा कि ब्रह्मा ने मेरा दर्शन नहीं पाया और इनसे झूठी गवाही दिलवायी है। ये तीनों झूठ बोल रहे हैं।

माता ने तीनों को शाप दिया

यह सुनि माता कीन्हें दापा। ब्रह्मा को तब दीन्हों शापा।।
पूजा तोरि करै कोई नाहीं। जो मिथ्या बोलेउ मम पाहीं।।
इक मिथ्या अरु अकरम कीन्हा। नरक मोट अपने शिर लीन्हा।।
आगे ह्वै जो शाख तुम्हारी। मिथ्या पाप करहि बहु भारी।।
प्रगट करहिं बहु नेम अचारा। अन्तर मैल पाप विस्तारा।।
विष्णु भक्त सों करहिं हँकारा। ताते परि हैं नरक मँझारा।।

कथा पुराण औरहिं समुझैहैं। चाल बिहून आपन दुख पैहैं।।
उनसे और सुनैं जो ज्ञाना। करिसो भक्ति कहों परमाना।।
और देव को अंश लखैहै। औरन निन्दि काल मुख जैहैं।।
देवन पूजा बहु विधि लैहै। दछिना कारण गला कटैहैं।।
जा कह शिष्य करैं पुनि जायी। परमारथ तिहि नाहिं लखायी।।
परमारथ के निकट न जैहैं। स्वारथ अर्थ सबै समुझैहैं।।
आप स्वारथी ज्ञान सुनैहैं। आपनि पूजा जगत दृढ़ै हैं।।
आपन पूजा जगहि दिढायी। परमारथ के निकट न जायी।।
आप ऊँच औरहि कहँ छोटा। ब्रह्मा तोर सखा होई खोटा।।

जब लग अस कीन्ह प्रहारा।
ब्रह्मा मूर्छित मही कर धारा।।

माता के बचन सुन ब्रह्मा मुर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

गायत्री जान्यो तिहि वारा। हुइ हैं तोर पंच भरतारा।।
गायत्री तोर होई वृषभ भतारा। सात पाँच और बहुत पसारा।।
धर औतार अखज तुम खायी। बहुत झूठ तुम बचन सुनायी।।
निज स्वारथ तुम मिथ्या भाखी। कहा जानि यह दीन्ही साखी।।
मानि साप गायत्री लीन्ही। सावित्रिहि तब चितवत कीन्ही।।

आद्या शक्ति ने तब गायत्री को भी शाप दिया, कहा–गाय हो जा! तेरे अनेक पति होंगे। जिस मुख से झूठ बोला, उसी मुख से अब विष्ठा भी खाना। अब अद्या शक्ति ने सावित्री की ओर देखा।

पुहुपावती निज नाम धरायेहु। मिथ्या कह निज जन्म नशायेहु।।
सुनहु पुष्पावति तुम्हरो विश्वासा। नहिं पुजिहैं तुमसे कछु आसा।।
होय कुगंध ठौर तब बासा। भुगतहु नरक काम गहि आसा।।
जो तोहि सींच लगावे जानी। ताकर होय वंश की हानी।।

अब तुम जाय धरो औतारा। क्योड़ा केतकी नाम तुम्हारा।।

आद्या शक्ति ने पुहुपावती को भी शाप दिया, कहा–तुमने झूठ बोला कि फूल से उत्पन्न हुई, जा केली का फूल हो जा। तू कुण्ठाओं पर उत्पन्न होगी और तुझे लगाने वाले का वंश ही समाप्त हो जायेगा।

भये शापवश तीनों विकल मति हीन छीन कुकर्मते।
यह काल प्रचण्ड कामिनि डस्यो सब कहँ चर्मते।।
ब्रह्मादि शिव सनकादि नारद कोउ न बचि भागि हो।
सुनु धरमनि विरल बाचे सब्द सत सो लागि हो।।

शाप पाकर तीनों व्याकुल हो गये और कुकर्म के कारण सबकी मति हीन हो गयी। साहिब धर्मदास से कहते हैं कि काल का यह प्रचण्ड जादू सबपर छाया हुआ है, जिस कारण माया के कामिनि रूप से कोई नहीं बच पाया, सबको इसने डस लिया है। कहाँ तक बात की जाए, ब्रह्मादि, शिव, सनकादि, नारद आदि कोई भी इससे बचकर भाग नहीं सका। हे धर्मदास! इससे केवल वे बिरले जन ही बच सकते हैं, जो सद्गुरु से सत्य शब्द पाकर उसमें रमे रहें।

शाप तीनों को दै लियो, मन माहिं तब पछतावई।
कस करहि मोहि निरंजना, पल छमा मोहि न आवई।।

तो जब तीनों को शाप दे दिया तो शक्ति मन ही मन पछताने लगी कि मैंने इन्हें शाप क्यों दिया, छमा क्यों नहीं कर दिया, अब निरंजन पता नहीं क्या करेगा!

निरंजन ने आकाशवाणी की

अकास बानी तब भयी, यहु कहा कीन भवानिया।
उत्पति कारन तोहि पठायो, कहा चरित यह ठानिया।।

निरंजन ने आकाशवाणी की, कहा–हे भवानी! यह तुने क्या किया! मैंने तुम्हें सृष्टि का कार्य करने को कहा, लेकिन तूने क्या चरित्र किया!

अद्या को भी मिला शाप

नीचहि ऊँच सिताय, बदल मोहि सो पावई।।
द्वापर युग जब आय, तुमहूँ पंच भतारि हो।।

निरंजन ने कहा कि आगे भी जो कोई बलवान निर्बल को सतायेगा, मैं उसे बदले में दुख दूगाँ, और अद्या को शाप दिया कि जब द्वापर युग आयेगा जो द्रोपती (गायत्री) के पाँच पति होंगे वो आपके (आद्या शक्ति) पुत्र होंगे और बिना बाप के होगे।

शाप ओयल जब सुनेउ भवानी। मन सन गुने कहा नहिं बानी।।
ओयल प्रभाव शाप हम पाया। अब कहा निरंजन राया।।
तोरे बस परी हम आई। जस चाहो तस करो उपाई।।

बदले में निरंजन की आकाशवानी सुन अद्या चुप रह गयी और मन ही मन कहने लगी कि शाप के बदले में मैंने शाप पाया, पर मैं तो तेरे वश में हूँ, इसलिए जो तेरी इच्छा है, वही कर।

मन ही सख्यी देव निरंजन, तोहि रहा भरमाई।
पांच पचीस तीन का पिंजड़ा, जामें तोहि राखा भरमाई॥

विष्णु को हुए पिता के दर्शन

अब माता विष्णु पहँ आई। लीन्ह विष्णु कहँ गोद उठाई।।
पुनि अस कहे उ आदि भवानी। अब सुनहु पुत्र मम बानी।।
देख पुत्र तोहिं पिता भिटावों। तोरे मन कर धोख मिटावों।।
प्रथमहिं ज्ञान दृष्टि सों देखो। मोर बचन निज हृदय परेखो।।
मन स्वरूप करता कहँ जानो। मनते दूजा और न मानो।।
स्वर्ग पताल दौर मन केरा। मन अस्थिर मन अहै अनेरा।।
क्षणमहँ कला अनंत दिखावे। मनकहँ देख कोइ नहिं पावे।।
निराकार मनही को कहिये। मन की आश निशि दिन रहिये।।
देखहु पलटि शून्य महँ जोती। जहवाँ झिलमिल झालर होती।।
फेरहु श्वास गगन कहँ धाओ। मार्ग अकाशहि ध्यान लगाओ।।
जैसे माता कहि समुझावा। तैसे विष्णु ध्यान मन लावा।।

विष्णु ने सत्य बोला था, इसलिए माता ने विष्णु को गोद में बिठाकर कहा कि हे पुत्र! तुझे पिता का दर्शन करवाती हूँ। मन ही सृष्टि का कर्त्ता है, मन से ही स्वर्ग, पाताल आदि हैं। मन को कोई देख नहीं पाता है, यही निराकार तुम्हारा पिता है। फिर शून्य में माता ने विष्णु को ज्योति के दर्शन करवाए और कहा कि श्वास को पलट कर ऊपर शून्य में चढ़ाओ, ध्यान लगाओ। विष्णु ने वैसा ही किया।

तेहि पीछे धर्मदास, मन पुनि आप दिखायऊ।
कीन्ह ज्योति परकास, देखि विष्णु हर्षित भये।।
मातहि नायो शीश, बहु अधीन पुनि विष्णु भा।
मैं देखा जगदीश, हे जननी परसाद तुव।।

तब मन विष्णु को दिखाई दिया, निरंजन(मन)ने ज्योति दिखाई और उसे देख विष्णु बड़े प्रसन्न हुए, माता को शीश नवाया, कहा–मैंने तुम्हारी कृपा से परमात्मा के दर्शन कर लिये।

धर्मदास का संशय

धर्मदास ने पूछा

धर्मदास गहि टेके पाया। हे साहिब इक संशय आया।।
कन्या मन को ध्यान बतावा। सो यह सकल जीव भरमावा।।

धर्मदास जी ने साहिब के चरण पकड़ लिये, कहा कि एक संशय है, अद्या ने उस मन का ध्यान करना विष्णु को बता दिया, जिसने सब जीवों को भरमाया हुआ है।

साहिब कहते हैं

धर्मदास यह काल स्वभाऊ। पुरुष भेद विष्णु नहिं पाऊ।।
कामिनी की यह देखहु बाजी। अमृत गोय दियो विष साजी।।
देख ज्योति पतंग हुलासा। प्रीति जान आवै तिहि पासा।।
परसत होवे भस्म पतंगा। अनजाने जरि मरे पतंगा।।
ज्योति स्वरूप काल असस आही। कठिन काल वह छाड़त नाहीं।।
काहि विष्णु औतारहि खाया। ब्रह्मा रुद्रहि खाय नचाया।।
कौन विपति जीवन की कहऊं। परखि वचन निज सहजहि रहऊं।।
लख जीव वह नित्यहि खाई। अस विकराल सो काल कसाई।।

साहिब ने कहा–हे धर्मदास! यह काल का स्वभाव था, परम पुरुष का भेद विष्णु ने नहीं पाया। अद्या का खेल तो देखो, उसने काल रूपी, मन रूपी विष का भेद विष्णु को देकर परम पुरुष रूपी अमृत का भेद गुप्त रखा। जैसे दीपक की लौ को देखकर पतंगा प्रसन्न होता है और प्रेम वश उसके पास आता है, पर उसके स्पर्श से वो पतंगा भस्म हो जाता है, अनजाने में बेचारा जल मरता है। ऐसे ही ज्योति स्वरूप काल भी किसी

को जीवित नहीं छोड़ता है। करोड़ों विष्णु के अवतारों को उसने खा लिया, ब्रह्मा और शिवजी को भी नचा-नचाकर खाया। फिर साधारण जीवों के जीवन का दुख कहाँ तक कहूँ! रोज़ एक लाख जीवों को वो खाता है, ऐसा भयानक कसाई है।

धर्मदास ने पूछा

धर्मदास कह सुनहु गुसाईं। मोरे चित्त संशय अस आई।।
अष्टंगीहि पुरुष उत्पानी। जिहि विधि उपजी सो मैं जानी।।
पुनि वहि ग्रास लीन्ह धर्मराई। पुरुष प्रताप सु बाहर आई।।
सो अष्टंगीहि अस छल कीन्हा। गोइसि पुरुष प्रगट यम कीन्हा।।
पुरुष भेद नहिं सुनत बतावा। काल निरंजन ध्यान करावा।।
यह कस चरित कीन्ह अष्टंगी। तजा पुरुष भइ काल की संगी।।

धर्मदास ने कहा-हे साहिब! मेरे चित्त में एक संशय है कि अद्या को परम पुरुष ने उत्पन्न किया। फिर उस अद्या को काल निरंजन ने खा लिया। फिर परम पुरुष के प्रताप से वो बाहर आई। ऐसी आद्य शक्ति ने परम पुरुष का भेद क्यों नहीं दिया। काल निरंजन का ध्यान क्यों करवाया! उसने यह चरित्र क्यों किया कि परम पुरुष को छोड़ काल के साथ हो गयी!

साहिब कहते हैं

धर्म सुनहु जन नारि सुभाऊ। अब तोहि प्रगट वरणि समझाऊँ।।
होय पुत्री जेहि घर माहीं। अनेक यतन परितोष ताहीं।।
गयी सुता जब स्वामी गेहा। रात्या तासु संग गुण नेहा।।
मात पिता सबै बिसरावा। धर्मदास अस नारि स्वभावा।।
ताते अद्या भई विगानी। काल अंग ह्वै रही भवानी।।
ताते पुरुष प्रगटने लायी। काल रूप विष्णुहि दिखलायी।।

साहिब ने कहा–हे धर्मदास! मैं तुम्हें नारी स्वभाव बताता हूँ। जब पुत्री घर में होती है तो बड़े यत्न से उसे प्रसन्न, संतुष्ट किया जाता है, पर जब वो पति के घर चली जाती है तो उसी में खो जाती है, उसी से प्रेम करने लगती है, तब माता–पिता को भूल जाती है। ऐसे ही अद्या ने भी किया; वो बेगानी हो गयी, इसी कारण उसने विष्णु को भी काल का रूप ही दिखलाया।

काल निरंजन

चकिया सब रागन की रानी॥
एक पाट धरती चले, एक चले असमानी।
काल निरंजन पीसन लागे सवालाख की घानी॥
बड़े २ इस जगमें पिस गये, पिसे गये योगी जिंदा।
छप्पन कोटि यादवा पिस गये, परे काल के फंदा॥
नौ भी पिस गये दस भी पिस गये, पिस गये सहस अठासी।
कथनी कथ कथ पिस गये भक्ता भये, गर्भ के वासी॥
नौऊनाथ चौरासी पिस गये, बृह्मा सुत अट्ठासी।
मौनी औ सन्यासी पिस गये, परे काल की फांसी॥
जंगम और सेबड़ा पिस गये, रावण कंसा।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, बचे विवेकी संता॥

विष्णु बने ठाकुर

धर्मदास ने पूछा

हे साहब यह जान्यो भेदा। अब आगे का करहु उछेदा।।

कहा कि अब आगे का भेद समझाकर कहें।

साहिब ने कहा

पुनि माता कहि विष्णु दुलारा। मरद्यो मान जेठनिजबारा।।
अहो बिस्नु तुम लेहु असीसा। सब देवन में तुमही ईसा।।
प्रथम पुत्र ब्रह्मा दुरि गयऊ। अकरम झूठ ताहि प्रिय भयऊ।।
देवन श्रेष्ठ तुमहिं कहँ मानहिं। तुम्हरी पूजा सब कोइ ठानहिं।।

माता ने विष्णु को आशीर्वाद दिया कि तुम सब देवताओं में श्रेष्ठ होंगे, क्योंकि बड़े पुत्र ब्रह्मा ने झूठ और कुकर्म जैसे पाप किये, इसलिए अब सब तुम्हारी ही पूजा करेंगे।

रूद्र पास गयी तब माता। तुम शिव कहो हृदय की बाता।।
माँगहु जो तुम्हरे चित भावे। सो तोहि देऊँ मात फरमावे।।

अद्या ने फिर शिवजी से पूछा कि तुम क्या चाहते हो, माँग लो।

जोरि पानि शिव कहबे लीन्हा। देहु जननि जो आज्ञा कीन्हा।।
कबहुँ न बिनसे मेरी देही। हे माता माँगों बर ऐही।।
हे जननी यह कीजै दाया। कबहु न बिनसै मेरी काया।।

शिवजी ने कहा–हे माता! मेरा शरीर कभी न मिटे।

कह अष्टंगी अस नहीं होई। दूसरा अमर भयो नहिं कोई।।
करहु योग तप पवन सनेहा। रहै चार युग तुम्हरी देहा।।
जौ लौं पृथ्वी अकाश सनेही। कबहुँ न विनशै तुम्हरी देही।।

आद्य शक्ति ने कहा–हे शिव! दूसरा अमर कोई नहीं हुआ, तुम पवन योग करो, जब तक पृथ्वी, आकाश, ब्रह्माण्ड रहेगा, तुम्हारा शरीर रहेगा।

ब्रह्मा मन में भयो उदासा। तब चलि गयो विष्णु के पासा।।
जाय विष्णु सो विनती ठाना। तुम हो बंधु देव परधाना।।
तुम पर माता भई दयाला। शाप विवश हम भये बिहाला।।
निज करनी फल पाये हो भाई। किहि विधि दोष लगाऊँ माई।।
अब अस जतन करो हो भ्राता। चले परिवार वचन रहे माता।।

ब्रह्मा जी उदास होकर विष्णु के पास गये और विनती करते हुए कहा कि माता तुम पर दयाल हुई और शाप के कारण मेरा बुरा हाल हुआ, तुमने अपनी करनी का फल ही पाया है, इसलिए माता को भी दोष नहीं लगाया जा सकता है, पर अब कोई ऐसा यत्न करो कि माता की बात भी रह जाए और मेरा वंश भी चले।

कहे विष्णु छोड़ो मन भंगा। मैं करिहौं सेवकाई संगा।।
तुम जेठे हम लहुरे भाई। चित संशय सब देहु बहाई।।
जो कोई होवे भक्त हमारा। सो सेवै तुम्हरो परिवारा।।

विष्णु ने कहा–हे ब्रह्मा! तुम बड़े भाई हो और मैं छोटा हूँ, मैं

आपकी सेवा करूँगा, इसलिए दुखी मत होवो। जो भी हमारा भक्त होगा, वो जो-2 पुण्य आदि कर्म(यज्ञ, कीर्तन, दान आदि)करेगा, सो तुम्हारे परिवार के द्वारा ही। यानी ब्राह्मणों द्वारा ही सब लोग शुभ कर्म करवाते हैं।

ब्रह्मा भये आनंद, जबहि विष्णु अस भासेऊ।।
मेटेउ चित कर द्वंद, सखा मोर सब सुखी भौ।।

यह सुन ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए, उनके चित्त का क्लेश समाप्त हुआ, क्योंकि वे जान गये कि अब मेरी संतान सुखी हो जायेगी, छल-कपट करके भी सुख से रहेगी।

चलो चलो सब कोउ कहै, मोहि अंदेशा और।
साहिब से परिचय नहीं, जायेंगे किस ठौर॥

चौरासी लाख योनियाँ बनीं

यह सब द्वंद बाद ह्वै गयऊ। तब पुनि जग की रचना भयऊ।।
चौरासी लख योनिन भाऊ। चार खानि चारहु निर्माऊ।।

जब यह झगड़ा समाप्त हो गया तो फिर जगत की रचना की गयी, चौरासी लाख योनियाँ और चार खानि बनाई गयीं।

प्रथम अंडज रच्यो जननी, चतुरमुख पिंडज कियो।।
विष्णु उष्मज रच्यो तबही, रुद्र अस्थावर लियो।।
लीन्ह रचि जेहि खानि चारो,जीव बंधन दीन्ह हो।।

माता ने अंडज खानि की उत्पत्ति की, ब्रह्मा ने पिंडज खानि की उत्पत्ति की, विष्णु ने उकमज खानि के जीवों को रचा और शिवजी ने अस्थावर जीवों की रचना की। इस तरह चार खानि की रचना करके जीवों को बाँध दिया।

नौ लख जल के जीव बखानी। चौदह लाख पक्षी परवानी।।
किरम कीट सत्ताइस लाखा। तीस लाख पिंडज भाखा।।
चतुर लक्ष मानुष परमाना। मानुष देह परम पद जाना।।
और योनि परिचय नहिं पावे। कर्म बंध भव भटका खावे।।

नौ लाख जल के जीव(अस्थावर)हैं, 14 लाख अंडज हैं, 27 लाख उकमज खानि के जीव(कीट-पतंगे)हैं, 30 लाख पिंडज खानि हैं और चार लाख मानुष योनि हैं। इनमें मनुष्य ही परम पद(मोक्ष) की प्राप्ति कर सकते हैं, बाकी नहीं।

चार खानि के तत्व भेद

धर्मदास ने पूछा

धर्मदास नायो पद शीशा। यह समुझाय कहो जगदीशा।।

सकल योनि जिव एक समाना। किमि कारण नहिं इक सम ज्ञाना।।

सो चरित्र मुहि कहौ बुझाई। जाते चित संशय मिट जाई।।

धर्मदास ने पूछा–हे सद्गुरु! सभी योनियों में यदि एक ही जीव है तो क्या कारण है कि सबमें एक समान ज्ञान नहीं है?

साहिब ने कहा

चार खानि जिव एकै आहीं। तत्व वशेष अहैं सुन ताहीं।।
सो अब तुमसों कहो बखानी। तत्व एक अस्थावर जानी।।
ऊष्मज दोय तत्व परमाना। अंडज तीन तत्वगुणजाना।।
पिंडज चार तत्व गुण कहिये। पाँच तत्व मानुष तन लहिये।।
तासों होय ज्ञान अधिकारी। नर की देह भक्ति अनुसारी।।

साहिब ने कहा कि यद्यपि चारों खानि में एक ही जीव हैं, पर तत्वों के कारण सबमें कम-ज़्यादा ज्ञान है, चेतना है। अस्थावर खानि के जीवों की रचना एक तत्व से हुई है, उकमज में दो तत्व हैं, अंडज में तीन तत्व हैं, पिंडज में चार तत्व हैं और मनुष्य में पाँचों तत्व हैं। इसी कारण मनुष्य में ज्ञान अधिक है, यह भक्ति-ध्यान के अनुकूल है।

धर्मदास ने पूछा

हे साहिब मुहि कहु समुझाई। कौन कौन तत्व इन सब पाई।।
अंडज अरु पिंडज के संगा। ऊष्मज और अस्थावर अंगा।।

सो साहिब मोहि वरणि सुनाओ। करो दया जनि मोहि दुराओ।।

धर्मदास ने कहा कि कौन-2 सी खानि में कौन-2 से तत्व हैं, कृपा करके मुझे समझाकर कहिए, छिपाइए मत।

साहिब ने कहा

खानि अंडज तीन तत्व हैं, अप वायु अरु तेज हो।
अचल खानि एक तत्वहि, तत्व जल का थेग हो।।

साहिब ने कहा कि अंडज खानि में तीन तत्व हैं–पानी, हवा और अग्नि। दूसरी ओर अस्थावर में एक ही तत्व है–जल।

ऊष्मज तत हैं दोय, वायु तेज सम जानिये।
पिंडज चारहिं सोय, पृथ्वी तेज अप वायु सम।।

उकमज में दो तत्व हैं–वायु और अग्नि। पिंडज में चार तत्व हैं–पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु।

पिंडज नर की देह सँवारा। तामें पाँच तत्व विस्तारा।।
ताते ज्ञान होय अधिकाई। गहे नाम सत लोकहिं जाई।।

पिंडज की मनुष्य खानि में पाँच तत्व हैं, इसलिए उसमें अधिक ज्ञान है और वो नाम के सहारे अमर लोक जा सकता है।

दुर्लभ मानुष जन्म है, मिले न बारम्बार।
तरुवर ज्यों पत्ती झड़े बहुरि न लागे डार॥

ज्ञान विभिन्नता का कारण

धर्मदास पूछते हैं

कहे धर्मदास सुन बंदीछोरा। इक संशय प्रभु मेटो मोरा।।
सब नर नारि तत्व सम आहीं। इक सम ज्ञान सबन को नाहीं।।
दया सील संतोस छमा गुन। कोई शून्य कोई होय संपुरन।।
कोई मनुष्य होय अपराधी। कोई सीतल कोई काल उपाधी।।
नाना गुन किहि कारन होई। साहिब बरन सुनाओ सोई।।

धर्मदास ने पूछा–हे साहिब! सभी नर-नारियों में भी एक समान ज्ञान क्यों नहीं है, जबकि सबमें तत्वों की समानता है। कोई पापी है तो कोई पुण्यात्मा, कोई ज्ञान शून्य है तो कोई बहुत ज्ञानवान। विभिन्न गुणों वाले नर-नारी क्यों हैं!

साहिब कहते हैं

धर्मदास परखहुँ चित्त लायी। नर नारि गुन कहुँ समझायी।।
चारि खानि जीव भरमाया। तब ले नर की देही पाया।।
देह धरे छोड़े जस खाना। तैसे का कहुँ ज्ञान बखाना।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि चार खानि में भरमने के बाद जीव को मनुष्य तन मिलता है और जिस खानि की देह को छोड़कर वो मानव तन में आता है, उसी के अनुसार उसमें ज्ञान और गुणों का समावेश हो जाता है।

विभिन्न योनियों से मानव तन में आए हुओं की पहचान

प्रथम अंडज की कहौं मैं बानी। एकहि एक कहो बिलछानी।।
आलस निद्रा ता कहँ होइ। काम क्रोध दरिद्री सोइ।।
चोरी चुगली निंदा ठाने। ज्ञान ध्यान कछु मनहिं न आनै।।
गुरु सतगुरु चीन्हें नहिं भाई। वेद शास्त्र सब देइ उठाई।।
आपन नीच ऊँच मन होई। हम सम दूसर और ना कोई।।
मैंले बस्तर नहीं नहाई। आँख कीच मुख लार बहाई।।
पाँसा जुवा चित्त मन आने। गुरु चरनन निसि नहिं जाने।।
कुबरा मूढ़ ताहि का होई। लम्बा होय पाव पुनि सोई।।

साहिब कह रहे हैं कि जो अंडज खानि से मानव तन में आए हैं, उनकी पहचान बताता हूँ। उनमें निद्रा होती है, काम, क्रोध, से ग्रस्त होते हैं, दरिद्री होते हैं, चोरी, चुगली, परायी निंदा आदि ही उनका काम होता है, दूसरों के घर में आग लगाते हैं। सबसे बहस करते हैं, पर कुछ भी ज्ञान, ध्यान उनमें नहीं होता। गुरु-सतगुरु की पहचान उन्हें नहीं होती, वेद-शास्त्रों का कुछ पता नहीं होता, तुच्छ होते हुए भी खुद को बड़ा समझते हैं, मैले कपड़े पहने रखते हैं, आँखों से कीच और मुँह से लार टपकती रहती है, जुए में मस्त रहते हैं, सिर उनका कुबड़ा और पाँव लम्बे होते हैं।

कहें कबीर सुनो धर्मदासा। ऊष्मज भेद कहौं परकासा।।
जाइ शिकार जीव बहु मारे। बहुत आनंद होय तिमि वारे।।
मार जीव जब घर कहँ आयी। बहु विधि रांध ताहि कहँ खाई।।
निंदे शब्द और गुरु देवा। निंदे चौका नरियर भेवा।।

झूठे वचन सभा में कहई। टेढ़ी पाग छोर उरमई।।
दया धरम मनहीं नहिं आवे। करें पुण्य तेहि हाँसी लावे।।
भाला तिलक अरु चंदन करई। हाट बजार चिकन पट फिरई।।
अन्तर पापी ऊपर दाया। सो जिव यम के हाथ बिकाया।।
लंब दाँत अरु वदन भयावन। पीरे नेत्र ऊँच अति पावन।।

उकमज खानि से मानव तन में जो आए होते हैं, उन्हें शिकार खेलने में बड़ा आनन्द आता है। शिकार मारकर लाते हैं, और बड़े यत्न से पकाकर खाते हैं। गुरु और उनके नाम की निंदा करते हैं, झूठ बोलते हैं, टेढ़ी पगड़ी पहनते हैं, जिसका छोर लम्बा लटकता रहता है, उनके हृदय में दया-धर्म कुछ भी नहीं होता और दूसरों को पुण्य कर्म करते देख उनकी हँसी उड़ाते हैं। खुद माथे पर तिलक और चन्दन लगाकर बाजार में मटक-2 कर चलते हैं, उनके हृदय में कपट होता है, हृदय उनका कठोर होता है और ऊपर से कोमल बनते हैं, उनके दाँत लम्बे और शरीर डरावना होता है, उनकी आँखें आगे को उभरी होती हैं।

अचल खानि को कहौं सँदेसा। देह धरे जस होवें भेसा।।
छनिक बुद्धि होवे जिव केरी। पलटत बुद्धि न लागे बेरी।।
झंगा फेटा सिर पर पागी। राज द्वार सेवा भल लागी।।
इत उत चितवत सैन जुमारहि। पर नारी कहँ सैन बुलावहि।।
रस सों बात कहें मुख जानी। काम बान लागे उर आनी।।
पर घर ताकहिं चोरों जायी। लाज सर्म उपजे नहिं भाई।।
छन इक मन महँ बिसरे देवा। छन इक मन महँ कीजे सेवा।।
छन इक ज्ञानी पोथी बाँचा। छन इक माहिं सबन घर नाचा।।
छन इक मन में कीजे धर्मा। छन इक मन में करे अकर्मा।।
भोजन करत माथ खजआई। बाँह जाँघ पुनि भींजत भाई।।

भोजन करत सोय पुनि जाई। जो जगाय तिहि मारन धाई।।
आँखें लाल होहिं पुनि जाकी। कहँ लग भेद कहौं मैं ताकी।।

अस्थावर खानि से मनुष्य योनि में आने वालों की बुद्धि स्थिर नहीं होती, उनका निर्णय बदलता रहता है, सिर पर पगड़ी बाँधे रहते हैं, सरकारी नौकरी करते हैं, दूसरे की स्त्री की तरफ नज़र रखते हैं, इशारे से बुलाते हैं, कामुक बातें करते हैं और चोरों की तरह दूसरों के घर में घुसते हैं, यदि पकड़ लिए जाते हैं तो भी कोई शर्म नहीं होती, हँसते रहते हैं, एक क्षण में तो अपने ईष्ट को भूल जाते हैं और दूसरे ही क्षण उनकी सेवा करने लग जाते हैं, एक क्षण में तो पोथियाँ पढ़ने लगते हैं और दूसरे ही क्षण सबके घर में मौका मिलने पर नाचने लग जाते हैं, एक पल में तो शूरवीर हो जाते हैं और दूसरे ही पल कायर हो जाते हैं, एक पल तो अच्छे हो कर्म करने लगते हैं और दूसरे ही पल कुकर्मों में लग जाते हैं। भोजन करते हुए अपना माथा खुजलाते हैं, बाँह और जाँघ मलते हैं, भोजन के बाद सो जाते हैं और यदि कोई जगाए तो उसे मारने दौड़ते हैं, उनकी आँखें लाल होती हैं, उनका भेद कहाँ तक कहा जाए!

पिंडज खानिक लच्छ सुनाऊँ। गुन औगुन का भेद बताऊँ ।।
बैरागी उनमुनि मति धारी। करे धर्म पुनि वेद विचारी।।
तीरथ औ पुनि योग समाधि। गुरु के चरण चित्त भल बाँधी।।
वेद पुराण कथे बहु ज्ञाना। सभा बैठि बातें भल ठाना।।
राज भोग कामिनि सुख माने। मन शंका कबहुँ नहिं आने।।
उत्तम भोजन बहुत सुहाई। लौंग सुपारी बीरा खाई।।
चच्छु तेज जाकर पुनि जानी। पराक्रम देही बल ठानी।।
देखो स्वर्ग सदा तेहि हाथा। देखे प्रतिमा नावे माथा।।

पिंडज खानि से मानव तन में आने वालों में वैराग्य होता है, वे वेद के अनुसार धर्म कार्य करते हैं, तीर्थ, योग आदि करते हैं और गुरु से प्रेम

करते हैं, वेद, पुराण पढ़कर ज्ञान चर्चा करते हैं, राज भोग और स्त्री से प्रसन्न रहते हैं, मन में शंका नहीं आने देते हैं, उत्तम भोजन अच्छा लगता है, उनकी आँखों में तेज होता है, देह में पराक्रम होता है, स्वर्ग तो उनके हाथ ही होता है यानी अपने कर्मों से वे स्वर्ग तो हासिल कर ही लेते हैं।

छूटे नर की देह, जन्म धरे फिर आय के ।।
ताको कहौं संदेश, धर्मदास सुन कान दे।।

साहिब कहते हैं कि जो मानव शरीर छोड़कर पुनः मानव तन पाता है, अब उसकी पहचान बताता हूँ।

आइ अछत जो नर मर जाई। जन्म धरे मानुस को आई।।
सूरा होवे नर के माँहीं। भय डर ताके निकट न जाहीं।।
माया मोह ममता नहिं व्यापे। दुश्मन ताहिं देख डर काँपे।।
सत्य शब्द प्रतीत कर माने। निंदा रूप न कबहीं जाने।।
सतगुरु चरण सदा चित राखे। प्रेम प्रीति सो दीनन भाखे।।
ज्ञान अज्ञान दोइ कहँ बूझे। सत्य नाम परिचय नित सूझे।।
जो मानुस अस लछन होई। धर्मदास लखि राखो सोई।।

जो कुछ मानव तन पाने के बाद जल्दी शरीर छोड़ देते हैं, अपनी पूरी आयु से पहले शरीर त्याग देते हैं, वे वीर पुरुष होते हैं, उनके पास भय नाम की कोई वस्तु टिकती भी नहीं, उन्हें माया, मोह, ममता आदि भी नहीं सताती और उनके दुश्मन भी उनसे डरते हैं। वे सत्य शब्दों को प्रेम पूर्वक मान लेते हैं और दूसरों की निंदा नहीं करते। वे गुरु चरणों में चित्त लगाए रखते हैं, सत्य नाम को पहचान लेते हैं। ऐसे लक्षण जिनमें होते हैं, वे मानुष से मानुष तन में अपनी छूटी हुई आयु पूरी करने आए होते हैं।

चौरासी की धारा क्यों बनीं !

धर्मदास पूछते हैं

चौरासी योनिन की धारा। किह कारण यह कीन्ह पसारा।।
नर कारण यह सृष्टि बनाई। कै कोइ और जीव भुगताई।।

धर्मदास जी साहिब से पूछ रहे हैं कि मनुष्य के कारण यह सृष्टि बनाई गयी, फिर दूसरी योनियाँ क्यों बनीं! यानी चौरासी लाख योनियाँ क्यों बनाई गयीं!

साहिब ने कहा

धर्मनि नर देही सुखदायी। नर देही गुरु ज्ञान समायी।।
नर तनु काज कीन्ह चौरासी। शब्द न गहे मूढ़ मति नाशी।।
चौरासी की चाल न छाड़े। सत्य नाम सो नेह न माडे ।।
लै डारे चौरासी माहीं। परचै ज्ञान जहाँ कछु नाहीं।।
पुनि पुनि दौड़ काल मुख जाहीं। ताहू ते जिव चेतत नाहीं।।
यह तन पाय गहे सतनामा। नाम प्रताप लहे निजधामा।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि यह मानव-चोला बड़ा ही सुखदायी है, इसी में गुरु ज्ञान समा सकता है। वास्तव में इस मानव चोले के कारण ही चौरासी बनायी गयी ताकि जीव मूर्ख रहे, सत्य शब्द को न पकड़ पाए। (क्योंकि विभिन्न योनियों से आने के कारण जीव चेतन नहीं हो पाता है, यदि लगातार मानव चोला मिलता रहे तो जीव चेतन होकर भक्ति में लग जायेंगे और संसार का कार्य नहीं चलेगा) इसलिए उसे चौरासी में डाला गया, जहाँ ज्ञान नहीं है, जहाँ आत्म-साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। इसी कारण बार-2 जीव काल के मुख में जाता है और चेतन नहीं हो पाता है। यदि मानव तन पाकर कोई सच्चे नाम को पकड़ ले तो अमर-लोक चला जाता है।

निह अछर है सार, अछर ते लखि पावई।।
धर्मनि करो विचार, निह अछर निह तत्व है ।।

साहिब धर्मदास को सार तत्व के विषय में समझाते हुए कह रहे हैं कि वो नि:अक्षर है, अक्षर की सीमा से परे है, अक्षर तो लिखा जा सकता है, इसलिए हे धर्मदास! जो सार तत्व है, वो नि:अक्षर है, नि:तत्व है।

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिभया पर आवे नहीं, निरख परख के लेह॥

रक्षक की कला दिखा अंत में जीवों को खा जाता हैं निरंजन

धर्मदास ने पूछा

धर्मदास कहे शुभ दिन मोरा। हे प्रभु दर्शन पायउ तोरा।।
हे साहिब मैं तुम बलिहारी। आगल कथा कहो निरवारी।।
चार खानि रचि पुनि कस कीन्हा। सो सब मोहि बतावो चीन्हा।।

धर्मदास जी ने कहा–हे साहिब। आज बहुत ही शुभ दिन है जो आपका दर्शन हुआ, कृपा करके अब मुझे आगे की कथा कहो, मुझे बताओ कि चार खानि की रचना के बाद क्या किया गया!

साहिब ने कहा

सुन धर्मन यह है यमबाजी। जेहि न चीन्हे पंडित काजी।।
चारहु मिलि यह रचना कीन्हा। कच्चा रंग सु जीवहि दीन्हा।।
पाँच तत्व तीनों गुण जानो। चौदह यम ता संग पिछानो।।
यहि विधि कीन्हीं नर की काया। मारे खाय बहुरि उपजाया।।
ओंकार है वेद को मूला। ओंकार में सब जग भूला।।
है ओंकार निरंजन जानो। पुरुष नाम सो गुप्त अमानो।।
सहस अठासी ब्रह्मा जाया। भा विस्तार काल की छाया।।
ब्रह्मा ते जिव उपजे बारा। तिन पुनि कथे बहुत विस्तारा।।
स्मृति शास्त्र पुराण भटकावा। अलख निरंजन ध्यान दृढ़ावा।।
वेद मते सब जिव भरमाने। सत्य पुरुष को मर्म न जाने।।
निरंकार कस कीन्ह तमासा। सो चरित्र बूझो धर्मदासा।।

साहिब कह रहे हैं–हे धर्मदास! यह काल का खेल पंड़ित–काजी आदि नहीं समझ पाए। अद्या और त्रिदेव ने मिल जगत की रचना की और जीव को कच्चा रंग दिया यानी नश्वर शरीर में डाला। पाँच तत्व, तीन गुण और 14 यम एक जीव के साथ कर दिये। यानी 14 यम इस काया में जीव को भटकाने के लिए रखे। इस तरह मनुष्य की देही का निर्माण किया और बार–2 मार–खाकर बार–2 उत्पन्न किया। वेद में भी ओंकार की बात की गयी और इसी ओंकार में सारा जगत भटक गया। यही ओंकार निरंजन अथवा निरंकार है। परम पुरुष का भेद गुप्त रखा गया। काल ने अपना इतना विस्तार किया कि 88 हज़ार ब्रह्मा उत्पन्न किये, फिर ब्रह्मा ने आगे जीवों की सृष्टि की और वेद, शास्त्र आदि में सबको उलझा दिया, निरंजन का ध्यान करने को कहा। वेद–मत के अनुसार सभी जीव भ्रमित हुए, परम पुरुष का भेद नहीं मिला। साहिब कह रहे हैं– हे धर्मदास! यह सब निरंजन ने ही किया।

असुर ह्वै जीव सतावै, देव ऋषि मुनि कारकं ।
पुनि धरि अवतार रक्षक, असुर करत संहारकं ।।
जीव को दिखलाय लीला, आपनी महिमा घनी।
यहि जान जीव बाँध आसा, यही है रक्षक धनी।।
रक्षक कला दिखलाय कर, अंत काल भक्षण करै ।
पीछे जीव पछिताय बहुत, जब काल के मुख में परै ।।

यही निरंजन असुर रूप में आकर जीवों को सताता है, ऋषि–मुनियों को तंग करता है और फिर यही अवतार धारण कर रखवाला बनने की कला दिखाते हुए असुरों का संहार करता है। यह जीवों को अपनी लीला दिखाकर अपनी महिमा बताता है और जीव सोचते हैं कि शायद यही रक्षक है, पर वो रक्षक की कला दिखाकर अंतकाल में जीवों को खा जाता है। और फिर जीव जब काल के मुख में जाते हैं तो पछताते हैं।

जीवों को कष्ट दिये निरंजन ने

यम बाजी कोई चीन्ह न पाया। आशा दे यम जीव नचाया।।
लख जीव नित प्रति खाई। महा अपरबल काल कसाई।।
तप्त शिला निशि दिन तहँ जरइ। तापर लै जीवन कहँ धरई।।
जीवहि जारे कष्ट दिलावे। तब फिर लै चौरासी नावे।।

साहिब कह रहे हैं कि काल का खेल कोई नहीं समझ पाया, यह ऐसा भयानक कसाई है कि लाख जीवों को प्रतिदिन तप्त शिला पर भून-भून कर खाता है। जीवों को जलाकर कष्ट देकर फिर चौरासी की खानि में फेंक देता है।

जीव कीन्ह तब बहुत पुकारा। काल कष्ट देत अपारा।।
यमकर कष्ट सह्यो न जाई। है कोई रक्षक करो सहाई।।

ऐसे में जब काल जीवों को बहुत कष्ट दे रहा था तो जीवों ने पुकार की कि काल हमें बड़ा कष्ट दे रहा है, जो हमसे सहा नहीं जा रहा। यदि कोई रक्षक है तो हमें बचाओ!

चकिया सब रागन की रानी॥
एक पट धरती चले, एक चले असमानी।
काल निरंजन पीसन लागे सवालाख की धानी॥

अमर लोक से साहिब चले

देख जीवन विकल अति, दया पुरुष जनाइया।
दयानिधि सत पुरुष साहिब, तबहिं मोहिं बुलाइया।।
कहे मुहिं समुझाय बहु विधि, जीव जाय चितावहू।
तुम दरश ते हो जीव शीतल, जाय तपन बुझावहू।।

जीवों की पुकार जब परम पुरुष के पास पहुँची तो वे दयाल हुए, कबीर साहिब कह रहे हैं कि तब उन्होंने मुझे बुलाया और समझाकर कहा कि जीवों को चिताकर ले आओ।

कर परनाम ज्ञानी चले, करन हंस को काज।
जोपै काल न मानि है, तुम्हीं पुरुष को लाज।।

परम पुरुष को प्रणाम कर जीवों के काम के लिए साहिब चल पड़े।

नो भी पिस गये दस भी पिस गये, पिस गये सहज अठासी।
कथनी कथ कथ पिस गये भक्ता, भये गर्भ के वासी॥

निरंजन ने साहिब से बहस की

जबहिं पुरुष आज्ञा कीन्हा। जीवन काज पृथ्वी पग दीन्हा।।
आवत मिल्यो धर्म अन्याई। तिन पुनि हमसो रार बढ़ाई।।
मो कहँ देखि धर्म ढिग आवा। महा क्रोध बोले अतुरावा।।
योगजीत इहँवा कस आवो। सो तुम हमसों वचन सुनावो।।

जब साहिब आए तो रास्ते में निरंजन मिला, उसने क्रोधित होकर पूछा कि यहाँ क्यों आए हो!

निरंजन ने कहा

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानो वचन हमार।
तीन लोक पुरुषहिं दिये, स्वर्ग पताल संसार।।

निरंजन ने कहा–हे ज्ञानी! वापिस अपने घर जाओ, यह संसार मेरा है, परम-पुरुष ने दिया है।

साहिब ने कहा

मुहि जो पठयो पुरुष को, करन हंस के काज।
कालहि मार संहारि हों, दीन्ह सकल मोहे साज।।

साहिब ने कहा कि मुझे परम पुरुष ने जीवों के कल्याण के लिए भेजा है, तुझे मारने का सामान भी उन्होंने मुझे दिया है।

तासों कह्यो सुनो धर्मराई। जीव काज संसार सिधाई।।
तप्त शिला पर जीव जरावहु। जारि बारि निज स्वाद करावहु।।
तुम अस कष्ट जीव कहँ दीन्हा। तबहि पुरुष मोहि आज्ञा कीन्हा।।
जीव चिताय लोक लै जाऊँ। काल कष्ट से जीव बचाऊँ।।
ताते हम संसारहि जायब। दे परवाना लोक पठायब।।

साहिब ने कहा कि तुम तप्त शिला पर जीवों को भून-2 कर खा रहे हो, उन्हें अपार कष्ट दे रहे हो, इसलिए परम पुरुष की आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ, जीवों को चिताकर अमर लोक ले जाऊँगा।

निरंजन ने कहा

तबै निरंजन बोले बानी। कैसे हंस छुड़ावो ज्ञानी।।
जग के माहिं कीन्ह हम बासा। पशु पंछी जल थल में आसा।।
तिनसौ साठ हम पैठ लगाहीं। तामें सकल जीव उरझाहीं।।
तापर काम क्रोध हम डारी। तृष्णा सकल जीव कहँ मारी।।
तापर कीन्हों एक हम काजा। पाप पुण्य थापे हम राजा।।
इनमें जीव बंधे सब झारी। कैसे हंसहि लेव उबारी।।

निरंजन ने कहा कि जीवों को कैसे छुड़ा ले जाओगे! कहा-मैं ही सब में समाया हुआ हूँ। (मन रूप में निरंजन सबके अन्दर बैठा है) फिर तीन सौ ऐसे स्थान हैं, जहाँ मैंने पैठ लगायी हुई है, (360 ऐसे स्थान हैं जहाँ निरंजन ने थोड़ी-2 शक्तियाँ रखी हुई हैं, खुद बैठा हुआ है) सभी उनमें उलझे हैं, इस पर भी मैंने सबको काम, क्रोध, तृष्णा आदि से मारा हुआ है, बेहाल किया हुआ है। फिर मैंने पाप-पुण्य में जीव को बाँध दिया है, तुम उन्हें कैसे छुड़ाओगे!

साहिब ने कहा

सत्त शब्द हम बोले बानी। बचन हमारे छूटे प्राणी।।
गहै शब्द जब मन चित्तलाई। भजिहै काल जिव लेब छुड़ाई।।

साहिब ने कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ, जब जीव मेरे शब्द को पकड़ लेगा, वो छूट जायेगा।

निरंजन ने कहा

तबै निरंजन बोले बानी। सकल जीव बस हमरे ज्ञानी।।
तिनसौ साठ पैठ उरझेरा। कैसे हंसन लेव उबेरा।।

गंगा जमुना सरसवती जानी। पुष्कर गोदावरी मानी।।
बद्री केदार हमका ठाऊँ । जहाँ तहाँ हम तीरथ लगाऊँ ।।
सेतु बन्ध पुनि कीन्ह ठिकाना। पुष्कर क्षेत्र आय हम थाना।।
गढ़ गिरनार दत्त को थाना। ताहि घेर हम बैठे निहाना।।
कमरू माह कमच्छा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।।
नगर अयोध्या रामहिं राजा। खैहैं दइत बाँध सब साजा।।
याही पैठ जग जीव भुलाई। किहिं विधि हंस लेव मुकताई।।

निरंजन ने कहा कि बड़े स्थान हैं, जहाँ जीव भ्रमित है। गंगा, यमुना, गोदावरी, मथुरा, बद्रीनाथ, केदार, अयोध्या, पुष्कर आदि जगहों पर बैठ मैंने जीवों को भुलाया हुआ है, फिर किस विधि से तुम उन्हें छुड़ाओगे!

साहिब ने कहा

तब ज्ञानी अस बोले बानी। जमते जीव छुड़ावहुँ आनी।।
पुरुष नाम को कहुँ समुझाई। जम राजा तब छोड़ पराई।।
घाट-घाट बैठे उरझेरा। हमरे शब्द ते होय निबेरा।।
सुन रे काल दुष्ट अन्याई। शब्द सग हंसा घर जाई।।

साहिब ने कहा–हे निरंजन! मैं परम पुरुष का नाम दूँगा, यम का जोर फिर उनपर नहीं चलेगा, तुम स्थान-2 पर बैठे उन्हें भ्रमित कर रहे हो, मेरे शब्द से वे छूट जायेंगे, शब्द उन्हें अपने साथ अमर लोक ले जायेगा।

निरंजन ने कहा

का ज्ञानी देहो अधिकारा। हमरो नहिं छूटे यम जारा।।
पाँच पचीस तीन गुन आही। यह लै सकल शरीर बनाई।।
तामें पाप पुण्य को वासा। मन बैठा ले हमरी फाँसा।।

जहाँ तहाँ जग भरमावै। ज्ञान संधि कछु रहन न पावै।।
एक शब्द की केतक आशा। मेरे हैं चौरासी फाँसा।।

निरंजन ने साहिब से कहा कि तुम जीवों को मुझसे छुड़ाकर ले ही नहीं जा सकते, मैंने पाँच तत्वों से शरीर की रचना की है। उस पर फिर पाप-पुण्य में जीवों को बाँधा हुआ है। मन रूप में मैं सबके अन्दर समाया हुआ हूँ, किसी को सोचने भी नहीं देता हूँ कि क्या माज़रा है, तुम्हारा एक शब्द क्या कर लेगा, मैंने चौरासी लाख योनियों में जीव को उलझाया हुआ है।

साहिब कहते हैं

बोले ज्ञानी शब्द बिचारी। छूटे चौरासी की धारी।।
छूटै पाँच पचीस गुण तीनों। ऐसा शब्द पुरुष मैं दीन्हों।।

साहिब ने कहा कि मेरे पास बड़ा ज़बरदस्त नाम है, जिन्हें परम पुरुष का नाम(शब्द)दे दूँगा, उनका तुम कुछ नहीं बिगाड़ पाओगे। वो जीव तुम्हारे फंदे से आज़ाद हो जायेगा।

निरंजन ने कहा

हे ज्ञानी का करो बड़ाई। हमते नाहिं छूट जिव जाई।।
इसने युग भये का तुम देखा। ज्ञानी हंस न ऐको पेखा।।
का तुम करो का शब्द तुम्हारा। तीन लोक परलय कर डारा।।
साधु संत हम देखी रीती। परलय परे सकल जग जीती।।
करम रेख बाँधै सब साधा। सुर नर मुनि सकलो जग बाँधा।।

निरंजन ने कहा कि इतने युग हो गये, क्या एक भी जीव को सतलोक आते देखा! बड़ी ताक़त से मैंने जीव को बाँधा हुआ है, छूटने नहीं दूँगा, तुम और तुम्हारा शब्द क्या कर लेगा, मैं तीन लोक का नाश कर देता हूँ। निरंजन ने कई बार सृष्टि का प्रलय भी किया है। यह सब काम साहिब के नहीं हैं, परम पुरुष के नहीं हैं। इस पर साहिब ने कहा

भी है–**जो रक्षक तहँ चीह्नत नाहिं , जो भक्षक तहँ ध्यान** लगाहीं। निरंजन ने कहा कि इस पर भी मैंने पाप पुण्य में जीव को बाँधा हुआ है, आम आदमी की बात ही क्या है, सुर, नर, मुनि सारे संसार को बाँधा हुआ हूँ। एक भी जीव को जाने नहीं दूँगा। निरंजन ने साहिब से यह कहा। अब साहिब कह रहे हैं।

साहिब कहते हैं

ज्ञानी कहै काल अन्यायी। शब्द बिना तू खाय चबाई।।
अब तुम कस खैहो बटसारा। पुरुष भाषों विश्वासा।।
सुभ अरू असुभ का करे निबेरा। मेटो काल सकल उरझेरा।।

साहिब ने कहा–हे निरंजन! इसलिए तो मैं आया हूँ, तुमने एक भी जीव को सतलोक नहीं आने दिया। तब इनके पास में सच्चा नाम नहीं था, ये अपने ज़ोर से पार होना चाहते थे..... तुमने खा लिया। पर अब मैं परम पुरुष का बड़ा ज़बरदस्त नाम दूँगा, और तुम्हारा बस अब जीव पर नहीं चलने दूँगा, अन्दर से विश्वास भी नाम उन्हें देता जायेगा। शुभ और अशुभ का ज्ञान भी अन्दर से होता जायेगा, नाम जीव को पूरी सुरक्षा देता चलेगा और तुम्हारे सब बंधनों से छुड़ाकर अमर लोक ले जायेगा। साहिब ने एक अन्य स्थान पर भी कहा है–**सुमिरन पाय सत्य जो वीरा, संग रहूँ मैं दास कबीरा।**

निरंजन ने कहा

निरगुन काल तब बोले बानी। उरझे जीव सकल जम खानी।।
कैसे के तुम शब्द पसारो। कौने विधि तुम जीव उबारौ।।
ऐसे जीव सकल हैं करनी। कैसे पहुँचै पुरुष की सरनी।।
जग में जीव क्रोध विकरारा। कैसे पहुँचै पुरुष के द्वारा।।
क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी। धरिहैं जन्म नरक की खानी।।
लोभ होय सरप विकरारा। माटी भखे जीव अधिकारा।।

लोभ जन्म सूकर अवतारा। कैसे पावै मोक्ष को द्वारा।।
विषई विषै सब विष की खानी। ऐ सब कहिये जम सहिदानी।।

निरंजन ने कहा कि मैंने काम, क्रोध आदि में जीव को फँसाया हुआ है। ऐसे में तो कोई भी जीव परम पुरुष के लोक में नहीं पहुँच सकता। इस पर भी यम के 14 दूत मैंने हरेक में फिट किये हुए हैं, तुम उन्हें कैसे निकालोगे उन्हें! प्रत्येक आदमी के भीतर यम के 14 दूत बैठे हुए हैं। एक का काम हैं–नींद लाना, एक का काम है– विषयों को दिल में उत्पन्न करना, एक का काम है–मौज करना। जिससे जीव मौज करता है। एक का काम है–चित्त भंग कर देना। इसका नाम है–चित्तभगा, आदि ये यम के 14 दूत हैं,जो जीव को भ्रमित कर रहे हैं। इनके साथ काम, क्रोध आदि भी जीव पर छाए हुए हैं। विषयों में जीव को उलझा दिया है। जीव बड़ा गंदा हो गया हैं, तुम्हारे शब्द को कोई नहीं मानेगा।

साहिब ने कहा

ज्ञानी कहै करहु वरियारा। हमतो कीन्ह सकल निरबारा।।
जोई ज्ञानी होय हमारा। काम क्रोध ते होय नियारा।।
तृस्ना लोभहि देई बहाई। विषै जन्म सब दूर पराई।।
उनको ध्यान शब्द अधिकारी। काम क्रोध सब होय नियारी।।
नाम ध्यान हंस घर जाई। क्या रे काल तुम करो बड़ाई।।
उनमें यम का परै न छाहीं। ताते हंसा लोकहि जाई।।

साहिब ने कहा कि जिस शरीर में यह नाम दे दूँगा, तेरा ज़ोर उसमें नहीं चलेगा। वहाँ काम, क्रोध निकट नहीं आयेंगे और वो जीव निर्मल हो जायेगा, तुम उस जीव को छू भी नहीं पाओगे और वो जीव हंस रूप होकर अपने देश में चला जायेगा।

निरंजन ने कहा

कहे निरंजन सुन हो ज्ञानी। कथि हा जान तुम्हारी बानी।।
युगत महात्म सबै बताऊँ। तुम्हारा नाम ले पंथ चलाऊँ।।

अब निरंजन अपनी जगह आया। उसने कहा, मैं भी तुम्हारा नाम लेकर पंथ चलाऊँगा और जीवों को उलझा दूँगा। किसी को पता नहीं चलेगा कि सच क्या है और झूठ क्या है। यानी उसने कहा कि मैं नाम अपने वाला दूँगा और उस पर मोहर तुम्हारी होगी। इसलिए आज दुनिया में जीव उलझन में है, पता नहीं चल पाता है कि इतने नामों में से कौन-सा नाम सच्चा है और वो किसके पास है।

साहिब ने कहा

कहे ज्ञानी सुन काल विचारा। हंस हमार नहिं न्यारा।।
निसवासर रहै लौ लीना। शब्द विचार होय नहीं भीना।।
हंस हमारा शब्द अधिकारा। पुरुष परताप को करे सम्हारा।।
नाम जपै अरू सुरत लगाई। मिले कर्म लागे नहीं काई।।
शब्द मानि होय शब्द सरूपा। निश्चय हंसा होय अनूपा।।

साहिब ने कहा–हे निरंजन! जिसे सच्चा नाम मिल जाएगा, वो निर्मल हो जाएगा, फिर वो तुम्हारी तरफ जाएगा ही नहीं।

निरंजन ने कहा

ज्ञानी मोर अपर बल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम माना।।
इनको माने सब संसारा। कलि में गंगा मुक्ति द्वारा।।
देही दान से उतरे पारा। ऐसे सुमृत कहें विचारा।।
यह विधि जग जीव भुलाहीं। जरा मरन सब बंध बंधाहीं।।
सूतक पातक वेद विचारा। पूछ वेद से करहि सँहारा।।
एकादशी मुक्ति को भाई। योग जग्य करवे अधिकाई।।

निरंजन ने कहा कि मैंने सूतक, पातक, कर्मकाण्ड आदि अनेक वहमों में जीवों को उलझाया हुआ है, सब इन्हीं को मानते हैं, तुम्हारी बात कोई मानेगा ही नहीं, इसलिए मत जाओ दुनिया में।

साहिब ने कहा

सुनहु काल ज्ञान की संधी। छोरो जीव सकल की फंदी।।
जब निज बीरा हंसा पावै। जोग बरत तप सबै नसावै।।
वेद किताब की छोड़े आसा। हंसा करे शब्द विस्वासा।।
ताके निकट काल नहिं आवे। निज बीरा जो सुरत लगावे।।
जोग बरत पतहू है छारा। अद्भुत नाम सदा रखवारा।।

साहिब ने कहा कि जिसे सच्चा नाम मिल जाएगा, उसका सारा वहम अन्दर से धुल जाएगा, काल भी उसके निकट नहीं आ पाएगा। नाम सदा उसकी रक्षा करेगा।

निरंजन ने कहा

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई। मेरो उरझो सुरझो नहिं जाई।।
पावै शब्द होय अभिमानी। कैसे लोक जाहिं प्रानी।।
सब्द पाय कर चले न राहा। ज्ञानी कहाँ मुकति की थाहा।।

निरंजन ने कहा कि मैंने जो उलझनें डाली हुईं हैं वे सुलझेंगी ही नहीं, जीव नहीं समझेगा, यदि तुमने अपना शब्द दे भी दिया, तो भी जीव अहंकार में रहेगा, तुम्हारे नियमों पर नहीं चलने पायेगा, फिर मुक्ति कैसे मिलेगी!

साहिब ने कहा

तब ज्ञानी बोले मुख बानी। सुनियो काल निरंजन आनी।।
हंसा भक्ति जो करे हमारी। राखो सदा सब्द निज धारी।।
काम क्रोध अहंकार बिकारा। इनको तजिहैं हंस हमारा।।
पहुँचे हंस पुरुष दरबारा। अरे काल तोको तज डारा।।

साहिब ने कहा कि जो नाम पाकर मेरी भक्ति करेंगे, वे काम, क्रोध आदि छोड़ देंगे और तुम्हारी दुनिया को त्याग परम पुरुष के दरबार में पहुँच जायेंगे।

निरंजन ने कहा

निरंजन बोले गरब सो भाई। मोरे फंद तोर को जाई।।
करम जंजीर बँधा संसारा। जोई हम जग जाल पसारा।।
तीन लोक जोइन औतारा। आवागमन में फिर फिर पारा।।
उपजै विनसै रहै भुलाई। देव रिषी मुनि सकलो खाई।।
सिद्ध साधु अरु बड़े जु ज्ञानी। बाँध बाँध कर तोपि समानी।।
करम रेख ते कोई न न्यारा। तीन देव सुर असुर पसारा।।

निरंजन ने बड़े घमण्ड से कहा कि मेरे फंदे को तोड़कर कौन जा सका है, मैंने कर्म की जंजीर सें सारे संसार को बाँधा हुआ है, क्या ऋषि, क्या मुनि, क्या सिद्ध, क्या साधु, क्या देवता, त्रिदेव आदि सबको कर्म जाल में उलझाकर बार-बार खा जाता हूँ, कोई भी कर्म से न्यारा नहीं है।

साहिब ने कहा

कहै ज्ञानी सुन काल लबारा। करिहौं टूक जंजीर तुम्हारा।।
हंसन लैहों तुरत उबारी। पुरुष शब्द दीन्हों मोहि भारी।।

साहिब ने कहा-हे झूठे! तेरी कर्म की जंजीर को भी तोड़ दूँगा, परम पुरुष ने मुझे ऐसा जबरदस्त नाम दिया है कि कर्म जाल से भी जीव को छुड़ा लेगा।

क्रोधित निरंजन साहिब पर झपटा और असली रूप में आए साहिब

यह सुन काल भयंकर भयऊ। हम कहँ त्रास दिखावन लयऊ।।
सत्तर युग हम सेवा कीन्ही। राज बड़ाई पुरुष मुहिं दीन्ही।।
फिर चौंसठ युग सेवा ठयऊ। अष्टंगी पुरुष हम दयऊ।।
तब तुम मारि निकारे मोहि। योगजीत नहिं छाड़ों तोहिं।।
अब हम जान भली विधि पावा। मारों तोहि लेउँ अब दावा।।
गरजे काल महा बिकराला। सत्रह लाख लो पाँव पसारा।।
लपकै जीभ जिमि टूटे तारा। जिमि बिजली चमकै अँधियारा।।
सूढ़ बढ़ाय दंत अति बाढ़ा। मध्य घेर ज्ञानी कहँ ठाढ़ा।।
हमरे पौरुष हम बरियारा। तुम ज्ञानी का करो हमारा।।

यह सुन निरंजन क्रोधित हो गया, साहिब को भय दिखाने लगा, कहा कि परम पुरुष की सेवा करके मैंने तीन लोक का राज्य और अष्टंगी को प्राप्त किया, पर तब तुमने मुझे मानसरोवर से निकाल दिया, इसलिए अब मैं तुमसे बदला लूँगा, तुम्हें नहीं छोडूँगा। निरंजन ने तब विकराल हाथी का रूप धारण किया और सूँढ़ और दाँत बढ़ाकर साहिब को बीच में घेर लिया, कहा–हम बड़े बलवान हैं, तुम हमारा क्या करोगे!

ज्ञानी पुरुष शब्द कियो जोरा। पकड़ सूँढ़ दाँत गहि मोरा।।
मारे उ सब्द पाँव कर पेली। तोर सूँढ़ समुद्र गहि मेली।।
पुरुष रूप तबहीं पुन धारा। जौन सूरूप सकल औतारा।।

साहिब ने कहा कि तब वहाँ मैंने परम पुरुष का रूप धारण किया, अपने मूल रूप में आया, उसपर सुरति फेंकी, उसके दाँत तोड़ दिये और उसकी सूँढ़ पकड़ उसे समुद्र में फेंक दिया।

निरंजन अधीन हुआ

भया अधीन दोई कर जोरी। तुम सतपुरुष सरन हम तोरी।।
प्रथम ज्ञानी हम नहिं जाना। बन्धु जान कीन्हा अभिमाना।।
तुमसो बल बुद्धि हम धारा। अब तुम करहु मोर उद्धारा।।
मैं साहिब तुमको नहिं चीन्हा। सतपुरुष तुम दरसन दीन्हा।।
दोइ कर जोरि चरण चित लावा। धन्य भाग हम दरसन पावा।।

तब निरंजन अधीन हुआ और दोनों हाथ जोड़कर कहा कि मैं आपकी शरण में हूँ, आप तो स्वयं सत्पुरुष हैं, मैंने भाई जानकर आपसे युद्ध किया, आपको पहचाना नहीं, आपसे ही बल और बुद्धि का प्रयोग किया, इसलिए क्षमा करें। मेरा बड़ा भाग्य है कि आपने आज मुझे दर्शन दिये।

साहिब ने कहा

सुन रे काल निरंजन राई। पुरुष नाम जो बीरा पाई।।
ताको खूँट गहो मत लाई। सो हंसा मेरे लोकहि आई।।

साहिब ने कहा कि हे निरंजन! जिसे नाम मिल जाएगा, उसे तुम नहीं पकड़ोगे, वो मेरे देश में आएगा।

निरंजन ने कहा

सुनो गुसाईं विनती मोरी। नाम पाय करै कछु औरी।।
ज्ञान कथै अनत चित वासा। आवागमन की राखै आसा।।

निरंजन ने कहा कि जो नाम पाकर गलत चलें, नियमों का पालन न करें, आवागमन की इच्छा रखें, उनका क्या होगा, क्या वे भी पार होंगे!

साहिब ने कहा

सुनो निरंजन बचन हमारा। नहीं सत्त वह जीव तुम्हारा।।

तब साहिब ने वहाँ निरंजन से करार किया कि नहीं, उसे तुम ले जाना, वो जीव तुम्हारा हो जाएगा।

निरंजन ने कहा

दयावन्त तुम साहिब दाता। एतिक कृपा करो हो ताता।
पुरुष शाप सो कहँ अस दीन्हा। लच्छ जीव नित ग्रासन कीन्हा।।
तुमहू कृपा मो पर करहू। माँगो सो वर मुहि उच्चरहू।।
सतयुग त्रेता द्वापर माहीं। तीनहु युग शरण जीव थोरे जाहीं।।
चौथा युग जब कलियुग आवे। तब तुव शरण जीव बहु जावे।।
ऐसा वचन हार मुहिं दीजे। तब संसार गवन तुम कीजे।।

निरंजन ने कहा कि एक कृपा करो, परम पुरुष ने मुझे एक लाख जीव रोज़ खाने का शाप दिया है, इसलिए मुझे कृप्या एक वर दो कि सतयुग, त्रेता और द्वापर युग में आप थोड़े-2 जीव ही ले जायेंगे और जब कलयुग आयेगा तो बहुत सारे जीव ले जाना।

साहिब ने कहा

अरे काल परपंच पसारा। तीनों युग जीवन दुख डारा।।
विनती तोरि लीन्ह मैं जानी। मो कहँ ठग काल अभिमानी।।
जस विनती तू मोसन कीन्ही। सो अब बकसि तोहि कहँ दीही।।
चौथा युग जब कलयुग आये। तब हम आपन अंश पठाये।।

साहिब ने कहा कि तूने षड्यन्त्र रचकर तीन युग जीवों के लिए दुखदायी कर दिये, पर तुमने विनती की, इसलिए मैंने तुम्हें माफ़ कर तुम्हारी विनती मान ली, पर जब कलयुग आयेगा, तो मैं अपने अंश भेजूँगा।

अंश ब्यालिस पुरुष के, जीव कारण आवई।
कलि पंथ प्रगट पसारि के, वे जीव लोक पठावई।।

कहा– परम पुरुष के ब्यालिस अंश जीवों के कल्याण हेतु आयेंगे और अपना पंथ चलाकर जीवों को अमर लोक ले जायेंगे।

निरंजन ने कहा

वचन तुम्हार लीन्ह मैं मानी। विनती एक करों तुहि ज्ञानी।।
पंथ एक तुम आप चलाऊ। जीव लै सत लोक पठाऊ।।
द्वादस पंथ करों मैं साजा। नाम तुम्हार ले करों अवाज़ा।।

द्वादश यम संसार पठैहों। नाम तुम्हार पंथ चलैहों।।
प्रथम दूत प्रगटे मम जायी। पीछे अंश तुम्हारा आयी।।
द्वादश पंथ जीव जो ऐहैं। सो हमरे मुख आन समैंहैं।।

निरंजन ने कहा कि आपका कहा मैंने मान लिया, पर एक विनती है कि आप अपना एक पंथ चलाकर जीवों को अमर लोक ले जाना और मैं अपने 12 पंथ चलाकर जीवों को भटकाऊँगा। 12 यम मैं संसार में भेजूँगा, वे आपका नाम लेकर मेरा पंथ चलायेंगे और जो जीव उन पंथों में आ जायेंगे, वे मेरे मुख में ही समायेंगे यानी उन्हें मैं खा जाऊँगा।

साहिब ने कहा

धर्म जस तुम माँगहू सो, चरित्र हम भल चीन्हिया।।
पंथ द्वादश तुम कहे उसो, अमी घोर विष दीन्हिया।।
जो मेटि डारों तोहि को अब, पलटि कला दिखावऊँ।।
लै जीवबंद छुड़ाय यमसो, अमर लोक सिधावऊँ।।
पुरुष वचन अस नाहिं, यहै सोच चित कीन्हे।।
लै पहुँचावहुँ ताहि, सत्य शब्द जो दृढ़ गहे।।

साहिब ने कहा कि मैंने तुम्हारी चालाकी जान ली है, जो तुम माँग रहे हो। अपने 12 पंथ चलाकर अमृत में विष घोल देना चाहते हो। यदि तुमने अब कोई खेल दिखाया तो तुम्हें मिटा दूँगा और सब जीवों को छुड़ाकर अमर लोक ले जाऊँगा, पर अफसोस! परम पुरुष की ऐसी आज्ञा नहीं है, इसलिए जो जीव मेरे नाम को दृढ़ता से पकड़े रहेंगे, उन्हें ही मैं अमर लोक ले जाऊँगा।

निरंजन ने कहा

कहे धर्म जाओ संसारा। आनहु जीव नाम अधारा।।
जो कोई जैहैं शरण तुम्हारा। हम सिर पग दै होवे पारा।।

निरंजन ने कहा कि ठीक है, अब संसार में जाओ और जीवों को नाम के सहारे ले जाओ, जो कोई आपकी शरण में आयेगा, वो मेरे शीश पर पैर रखकर पार हो जायेगा।

साहिब आये संसार में

धर्मराय उठ सीस नवायो। तबहिं हम संसार सिधायो।।

निरंजन ने तब उठकर साहिब को प्रणाम किया और साहिब संसार में आए।

आये जहँ यम जीव सतावे। काल निरंजन जीव नचावे।।
चटपट करे जीव तहँ भाई। ठाढे भये तहाँ पुनि जाई।।
मोहि देख जीव कीन्ह पुकारा। हे साहिब मुहि लेहि उबारा।।
तब हम सत्य शब्द गुहरावा। पुरुष शब्द ते जीव जुड़ावा।।

साहिब तप्त शिला पर आए, जहाँ निरंजन जीवों को कष्ट दे रहा था, भून-2 कर खा रहा था। साहिब को देख जीवों ने पुकार की कि हमें छुड़ाओ। तब साहिब ने सत्य शब्द पुकारा, जिससे तप्तशिला ठण्डी हो गयी, जीव शांत हो गये।

सकल जीव तब अस्तुति लाये। धन्य पुरुष भल तपन बुझाये।।
यम ते छोर लेव तुम स्वामी। दया करो प्रभु अन्तरयामी।।

सब जीवों ने साहिब से पुकार की, कहा–हे प्रभु! हमें छुड़ाओ।

तब मैं कहा जीव समुझाई। जोर करो तो वचन नसायी।।
जब तुम जाय धरौ जग देहा। तब तुम करिहो शब्द सनेहा।।
देह धरी सत शब्द समाई। तब हंसा सत लोकै जाई।।
जहँ आशा तहँ वासा होई। ताको टार सका न कोई।।
जब तुम देह धरो जग जायी। बिसर्‌यो पुरुष काल धरि खाई।।

साहिब ने कहा कि यदि ऐसे ही जबरन ले जाऊँगा तो मेरा शब्द कट जाएगा, जो निरंजन को दे चुका हूँ, इसलिए जब तुम मानव तन में जाओगे तो मेरे शब्द से प्रीत करना, जिस देही में मेरा नाम आ जायेगा,

वो सतलोक चला जायेगा। साहिब ने कहा–जहाँ आशा होगी, वहीं वास होगा, तुमने परम पुरुष को भुला दिया, इसलिए काल पुरुष ने तुम्हें खा लिया।

जीवों ने कहा

कहे जीव सुन पुरुष पुराना। देह धरी विसर्‌यो यह ज्ञाना।।
पुरुष जान सुमरे उ यमराई। वेद पुराण कहे समुझाई।।
वेद पुराण कहे मत एहा। निराकार ते कीजे नेहा।।
सुर नर मुनि तैतीस करोरी। बाँधे सबै निरंजन डोरी।।

जीवों ने कहा कि हे साहिब! मनुष्य तन में जाकर हमें ज्ञान नहीं रहा, हम भूल गये, काल को ही परम पुरुष जानकर पूजने लगे, क्योंकि वेद पुराण आदि भी इसी निराकार की भक्ति करने को कह रहे हैं, सुर, नर, मुनि, 33 करोड़ देवता आदि सभी निरंजन को मान रहे हैं।

साहिब ने कहा

सुनो जीव यह छल यम कैरा। यह यम फंदा कीन्ह घनेरा।।

साहिब ने कहा कि काल ने ही यह जाल फैलाया है।

काल कन्या अनेक कीन्हे, जीव कारण जाल हो।
तीरथ व्रत जग योग फन्दे, कोई ना पावत बाट हो।।
देह धरि नर परगट हो, फिरि ताहि आशा कीन्हे ऊ।।
भरमत इत उत काल बस, बहु पुण्य में चित दीन्हे ऊ।।

काल और माया ने जीवों को फँसाने के लिए तीर्थ, योग, यज्ञ, तप आदि के अनेक जाल बनाए हैं, अनेक फंदे बनाए हैं, कोई भी सच्चा रास्ता नहीं पा रहा है। नर तन पाकर जीव काल की ही आशा में इधर उधर भटकते हुए पुण्य कर्मों में उलझ रहे हैं।

गुप्त वस्तु है नाम

धर्मदास ने पूछा

धर्मदास अस विनती लायी। ज्ञानी मोहि कहो समझायी।।
जो कछु पुरुष शब्द मुख भाखो। सो साहिब मोहि गोय न राखो।।
कौन शब्द ते जीव उबारा। सो साहिब सब कहो बिचारा।।

धर्मदास जी ने साहिब से पूछा कि परम पुरुष ने वो कौन-सा शब्द पुकारा, जिसे लेकर आप इस संसार में आए, और जिससे आप जीवों का कल्याण करते हैं!

साहिब ने कहा

पुरुष मोहि जैसो फुरमायी। सो सब तुमसों संधि लखायी।।
यहेउ मोहि बहु विधि समझायी। जीवहि आनो शब्द चितायी।।
गुप्त वस्तु प्रभु मो कहँ दीन्हा। नाम विदेह मुक्ति कर चीन्हा।।
दीन्ह पात परवाना हाथा। संधिछाप मोहि सौंप्यो नाथा।।
बिनु रसनाते सो धुनि होई। गुरुगम ते लखि पावे कोई।।
पंच अमीय मुक्ति का मूला। जातें मिटे गर्भ अस्थूला।।
यहि विधि नाम गहे जो हंसा। तारौ तासु इकोत्तर बंसा।।
नाम डोरि गहि लोकहि जायी। धर्मराय तिहि देखि डरायी।।
ज्ञानी करो शिष्य जेहि जाई। तिनका तोरो जल अँचवाई।।
जिहि विधि दीन्ह तुमहि मैं पाना। तेहि विधि देहुँ शिष्य सहिदाना।।

साहिब ने कहा कि परम पुरुष ने मुझसे जैसा कहा, सो मैं तुमसे कहता हूँ। उन्होंने मुझे कहा कि शब्द से जीवों को चिताकर ले आओ। उन्होंने मुझे गुप्त वस्तु दी, विदेह नाम दिया; उसमें बिना मुख के आवाज़ (Sound Less Sound) होती है। गुरु-कृपा से कोई ही उसे देख पाता है। जो उस नाम को विश्वास के साथ पकड़े रखता है, मैं उसके 71 वंश तारता हूँ। नाम की डोरी से ही जीव उस लोक में जाता है और ऐसे जीव को देख काल भी डर जाता है।

गुरु भक्ति का महत्व

साहिब कहते हैं

गुरुमुख शब्द सदा उर राखे। निशिदिन नाम सुधारस चाखे।।
पिया नेह जिमि कामिनि लागे। तिमि गुरु रूप शिष्य अनुरागे।।
पल पल निरखे गुरुमुख कांति। शिष्य चकोर गुरु शशि शांति।।
पतिव्रता ज्यों पतिव्रत ठाने। द्वितीय पुरुष सपने नहिं जाने।।
पतिव्रता दोउ कुलहिं उजागर। यह गुण गहे संत मति आगर।।
ज्यों पतिव्रता पिया मन लावे। गुरु आज्ञा अस शिष्य जुगावे।।
गुरु ते अधिक और कोई नाहिं। धर्मदास परखहु हिय माहीं।।
गुरु ते अधिक कोई नहिं दूजा। भर्म तजै करि सतगुरु पूजा।।
तीर्थ धाम देवल अरु देवा। शीश अर्पि जो लावें सेवा।।
तौ नहिं वचन कहें हितकारी। भूले भरमें यह संसारी।।

साहिब कहते हैं कि नाम रूपी रस का पान करते हुए गुरु के शब्दों को ही हृदय में धारण किये रखो। चंद चकोर की प्रीत की तरह गुरु के मुख को निहारते रहो। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री सपने में भी किसी दूसरे पुरुष की तरफ नहीं जाती, ऐसे ही गुरु के प्रति भाव रखो, गुरु आज्ञा में ही हर समय रहो, गुरु से अधिक किसी को नहीं मानो, सब भ्रम के जाल तोड़ कर केवल गुरु की मूर्ति का ही ध्यान करो। जो संसारी लोग हैं, वे तीर्थ, धाम, देव-पूजा आदि में भूले हुए हैं, पर तुम ऐसा मत करो।

गुरु भक्ति अटल अमान धर्मनि, यहि सरस दूजा नहीं।
जप योग तप व्रत दान पूजा, तृण सदृश यह जग कहीं।।

साहिब कहते हैं कि गुरु भक्ति सर्वोपरि है, उसके समान दूसरी कोई भक्ति नहीं। जप, योग, तप, व्रत, दान आदि उसके आगे तिनके के समान हैं।

शुकदेव भये गरभ योगेश्वर। उन समान नहिं थाप्यो दूसर।।

तजके तेज गये हरि धामा। गुरु बिन नहिं लहे विश्रामा।।
विष्णु कहे ऋषि कहँवा आये। गुरुबिहीन तप तेज भुलोये।।
गुरु बिहीन नर मोहि न भावे। फिर-2 जो इन सकट आवे।।
जाहु पलट करहु गुरु सयाना। तब पैरो यहँवा अस्थाना।।
सुनि मुनि शुकदेव वेगि सिधाये। गुरु बिहीन तहँ रहन न पाये।।
जनक बिदेह कीन्ह गुरु जानी। हरषि मिले तब सांरगपानी।।
नारद ब्रह्मा सुत बड़ ज्ञानी, यह सब कथा जगत में जानी।।
और देव ऋषि मुनिवर जेते। जिनगुरु कीन्ह उतर सो तेते।।
जो गुरु मिले तो पंथ बतावे। सार असार परख दिखलावे।।
गुरु सोई जो सत्य बतावे। और गुरु कोइ काम ना आवे।।
सत्य पुरुष के कहे संदेशा। जन्म जन्म का मिटै अंदेशा।।
पाप पुन्य की आशा पाहीं। बैठै अक्षय वृक्ष की छाहीं।।
भृंङ्गी मत होवे जिहि पासा। सोई गुरु सत्य सुनि धर्मदासा।।

महायोगेश्वर शुकदेव गुरु के बिना भक्ति कर रहा था तो नहीं पहुँच पाया था। विष्णु जी ने वापिस किया था, कहा कि गुरु के बिना इंसान मुझे अच्छा नहीं लगता। तब शुकदेव ने राजा जनक को गुरु किया था और जगह मिली थी। फिर ब्रह्मा का बेटा नारद तो इस अभिमान में था कि मुझे गुरु की आवश्यकता नहीं है। पर विष्णु जी ने उसे भी गुरु करने को कहा था, जो सब जानते हैं। जब सच्चे गुरु मिलते हैं, तभी सही राह मिलती है। जो गुरु सत्य पुरुष का संदेश देने वाला हो, वही सच्चा हो सकता है, और कोई नहीं। ऐसा गुरु ही जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ाकर अमर लोक ले जा सकता है। हे धर्मदास! जिस गुरु के पास भृंगे की तरह अपना शब्द सुनाकर शिष्य को अपनी तरह करने की शक्ति हो वही सत्य गुरु है।

सतयुग में आए साहिब

धर्मदास जो पूछयो मोहिं । युग-2 कथा कहौं मैं तोहि ।।
कहैं कबीर सुन धर्मन नागर । सतयुग हम आयेऊँ भौसागर ।।

धर्मदास जी द्वारा पूछने पर साहिब ने युग-2 की कथा का वर्णन किया, कहा कि मैं हर युग में संसार में आया। सबसे पहले मैं सतयुग में आया।

आया चतुरानन के पासा । तासों कीन्ह शब्द परकाशा ।।
ब्रह्मा चित दै सुनने लीन्हा । पूछयो बहुत पुरुष को चीन्हा ।।
तबहि निरंजन कीन्ह उपाई । जेठ पुत्र ब्रह्मा मोर जाई ।।
निरंजन मन घट विराजै । ब्रह्मा बुद्धि फेर उपराजै ।।

साहिब कह रहे हैं कि सतयुग में सबसे पहले मैं ब्रह्मा के पास आया और उसे परम पुरुष की बात समझायी। ब्रह्मा ध्यान से सुनने लगा, परम पुरुष का भेद पूछने लगा। इतने में निरंजन ने देखा कि मेरा बड़ा पुत्र ब्रह्मा तो मेरे शिकंजे से जा रहा है, उसने ब्रह्मा के अन्दर बैठ उसकी बुद्धि पलट दी।

ब्रह्मा ने कहा

निराकार निर्गुण अविनाशी । ज्योति स्वरूप शून्य का वासी ।।
ताहि पुरुष कहँ वेद बखाने । आज्ञा वेद ताही हम जाने ।।

ब्रह्मा ने कहा कि वेद से हमने जाना है कि परमात्मा निराकार है, निर्गुण है, ज्योति स्वरूप है और वो शून्य में रहता है।

जब देखा तेहि काल भटकाओ । तहँते उठ विष्णु पहँ आयो ।।
विष्णुहि कह्यो पुरुष उपदेशो । कालवश नहिं गहो सँदेशो ।।

तब साहिब ने देखा कि ब्रह्मा की बुद्धि तो काल ने पलट दी है, तब वे विष्णु के पास आए, विष्णु से परम पुरुष का भेद कहा, पर कालवश उसने भी साहिब का सँदेश नहीं पकड़ा।

विष्णु ने कहा

कहे विष्णु मोसम को आही। चार पदारथ हमरे पाही।।
काम मोक्ष धर्मारथ माही। चाहे जौन देउँ मैं ताही।।

विष्णु ने कहा कि मेरे समान कौन है! कहा–मेरे पास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–चारों पदार्थ हैं, इनमें से तुम्हें जो चाहिए, मैं दे सकता हूँ।

साहिब ने कहा

सुनहु सो विष्णु मोक्ष कस तोही। मोक्ष अक्षर परले तर होही।।
तुम नाहीं थिर थिर कस करहू। मिथ्या साखि कवण गुण भरहू।।
रहे सकुच सुन निरभय बानी। निज हिय विस्नु आप डर मानी।।

साहिब ने कहा कि तुम्हारे पास जो मोक्ष है, वो तो प्रलय तक रहेगा। तुम खुद ही स्थिर नहीं हो, फिर दूसरों को स्थिर कैसे करोगे! यह सुन विष्णु जी मौन हुए।

तब पुनि नाग लोक चलि गयऊ। तासे कछु–2 कहिबे लयऊ।।
पुरुष भेद कोइ जानत नाहीं। लागे सबहिं काल की छाहीं।।
राखनहार कहँ चीन्हो भाई। यम सो को तुहिं लेइ छुड़ाई।।

साहिब कहते हैं कि तब मैं नाग लोक चला और थोड़ी –2 बात परम पुरुष की करते हुए कहा कि उसका भेद कोई नहीं जानता है, सभी काल के पीछे लगे हुए हैं, इसलिए रक्षक को पहचानो, जो तुम्हें यम से छुड़ा ले।

ब्रह्मा विष्णु रुद्र जिहि ध्यावैं। वेद जासु गुण निशि दिन गावैं।।
सोइ पुरुष महिं राखनहारा। का करिहै यमराज बिचारा।।

शेषनाग ने कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिसका ध्यान करते हैं और जिसके गुणों का गान वेद भी दिन–रात करते हैं, वही मेरा रक्षक है, बेचारा यमराज क्या करेगा!

जाहि कहहु तुम राखनहारा। सो तुमहिं लै करहि अहारा।।
राखनहार और कोउ आही। करु विश्वास मिलाऊँ ताही।।

साहिब ने कहा कि जिसे तुम रक्षक कह रहे हो, वो तो तुम्हें खा जायेगा; वो भक्षक है; रक्षक कोई ओर है; यदि तुम विश्वास करो तो मैं तुम्हें उससे मिला दूँगा।

शेषनाग विष तेज सुभाऊ। वचन प्रतीत हृदय नहिं आऊ।।
सुनहु सुलच्छन धर्मन नागर। तब आयो मैं या भवसागर।।
आये जब मृत्यु मण्डल माहीं। जीव पुरुष कोइ देख्यो नाहीं।।
का कहँ कहियो पुरुष उपदेशा। सो तो अधिक यम को भेषा।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि विषैले स्वभाव वाले शेषनाग के हृदय में मेरे वचन सुन विश्वास नहीं हुआ, तो फिर मैं सीधा भवसागर चला आया। जब यहाँ आया तो एक भी जीव परम पुरुष की भक्ति करने वाला नहीं दिखा, मैं किसे उसका उपदेश दूँ, सब ही तो काल का भेष धारण किये हुए थे।

मैं आया संसार में, फिरा गाँव की छोर।
ऐसा बंदा ना मिला, जो लीजै फटक पछोर।।

कहा–गाँव–2 घूमा, गली–2 घूमा, कोई भी नहीं मिला, जो मेरी बात को समझे।..... इस तरह सौ साल धरती पर रहकर साहिब बापिस गये, कोई नहीं माना। तब साहिब ने गुप्त वस्तु दी, कहा–यह देना।

राम नाम का रहस्य

साहिब कहते हैं

ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादी। सब मिलि कीन्ह शून्य समाधी।।
कवन नाम सुमिरो करतारा। कवन नाम ध्यान अनुसारा।।
सबहिं शून्य महँ ध्यान लगाये। स्वाति नेह सीप ज्यों लाये।।
तबहिं निरंजन जतन बिचारा। शून्य गुफा ते शब्द उचारा।।
ररां सु शब्द उठा बहु बारा। मा अक्षर माया संचारा।।
दोउ अक्षर कहँ सम कै राखा। राम नाम सबहिन अभिलाखा।।
रामनाम लै जगहि दृढ़ायो। काल फन्द कोइ चीन्ह न पायो।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सनकादि ने मिलकर विचार किया कि परमात्मा का कौन सा नाम जपें, किस नाम से उसका ध्यान करें। तब सबने मिलकर शून्य में समाधि लगायी। ऐसे में निरंजन ने शून्य गुफा से ररां शब्द उच्चारा और माया ने मा शब्द उच्चारा। दोनों को मिलाया गया और राम नाम को चुना गया। सभी राम नाम का जाप करने लगे, पर काल के फंदे को कोई समझ नहीं पाया।

इस तरह राम शब्द में निरंजन और माया दोनों आ गये। इसलिए सत्य नाम इससे परे है।

सतयुग के हंस

धर्मदास सुन सतयुग भाऊ। जिन जीव को नाम सुनाऊ।।
नृप धोंधल पहँ हम चलि गयऊ। सत्य शब्द सो ताहि सुनयऊ।।
तिन शब्द हमारो सत्य माना। दीन्ह तिनको मैं पान परमाना।।

साहिब ने कहा–हे धर्मदास! अब जिन जीवों को मैंने शब्द सुनाया, उनका नाम बताता हूँ। सबसे पहले राजा धोंधल को मैंने अपने सत्य शब्द का भेद सुनाया तो उसने सत्य करके माना और उसे मैंने नाम(शब्द) दिया।

धोंधल शब्द चिताय, तब आयउ मथुरा नगर।
खेमसरी आयो धाय, नारि वृद्ध गोवालि सों।।

साहिब कहते हैं कि धोंधल राजा को शब्द से चिताकर फिर मथुरा नगर में आया, वहाँ वृद्ध ग्वालिन खेमसरी रहती थी। मुझे देख वो दौड़कर मेरे पास आ गयी।

कहे खेमसरी पुरुष पुराना। कहँवा ते तुम कीन्ह पयाना।।
तासों कहे उ शब्द उपदेसा। पुरुष भाव अरु यम को भेसा।।

खेमसरी ने कहा कि तुम कहाँ से आए हो? तुम परम पुरुष और काल की बातें कर रहे हो।

पै धोखा इक ताहि रहाई। देखे लोक तब मन पतियाई।।
राखेउ देह हंस लै धावा। पल इक माहिं लोक पहुँचावा।।
लोक दिखाय हंस लै आयो। देह पाय खेमसरी पछतायो।।
हे साहिब लै चलु वहि देशा। यहाँ बहुत है काल कलेशा।।

खेमसरी कुछ संशय में थी तो साहिब ने उसे अमर लोक ले जाकर उसका धोखा मिटा दिया, उसे विश्वास हो गया। जब वापिस आए तो वो पछताने लगी, कहने लगी कि वहीं ले चलो, यहाँ बहुत कष्ट हैं।

तासौं कहौं सुनो यह बानी। जो मैं कहूँ लेहु सो मानी।।

जबलौं ठीका पूर न आई। तब लग रहो नाम लौ लाई।।
तुम तो देखा लोक हमारा। जीवन को उपदेसहु सारा।।
एकहु जीव शरणागत लावे। सो जीव सत्पुरुष को भावे।।
जैसे गऊ बाघ मुख जायी। सो कपिलहि कोउ आय छुड़ायी।।
ता नर को सब सुयश बखाने। गऊ छुड़ाय बाघ ते आने।।
एक जीव को भक्ति दृढ़ावे। सो कोटिक गऊ पुण्य सो पावे।।

साहिब ने कहा कि जब तक जीवन की अवधि पूरी नहीं हो जाती, नाम में लौ लगाए रखो। तुमने तो हमारा लोक देख लिया, अब दूसरों को समझाकर इस सत्य भक्ति में लगाओ, जो एक भी जीव को शरणागत लाता है, वो परम पुरुष को बड़ा अच्छा लगता है। जैसे भोली-भाली गाएँ शेर के मुख में जाती है, पर जो गाय को शेर से छुड़ा लाता है, सब उसकी प्रशंसा करते हैं कि गाय को शेर से छुड़ा लाया। ऐसे ही जो एक जीव को भी काल पुरुष की भक्ति से छुड़ाकर सत्य भक्ति में लगा देता है, वो करोड़ों गाय को बचाने का फल पाता है।

खेमसरी परै चरण पर आयी। हे साहिब मोहि लेहु बचायी।।
मो पर दाया करहु प्रकाशा। अब नहिं परौं काल की फाँसा।।

खेमसरी चरणों पर गिर पड़ी, कहा–हे साहिब! मुझे काल से बचा लो।

सुन खेमसरी यह यम को देशा। बिना नाम नहिं मिटै अंदेशा।।
पुरुष नाम बीरा जो पावे। फिरकै भवसागर नहिं आवे।।

साहिब ने खेमसरी से कहा कि यह काल का देश है; बिना नाम के संशय नहीं मिटने वाला; जो परम पुरुष का गुप्त नाम पा जाता है, वो फिर भवसागर में नहीं आता।

कह खेमसरी परवाना दीजे। यम सों छोरि आपन करि लीजे।।
और जीव हमरे गृह आही। नाम पान प्रभु दीजै ताही।।

खेमसरी ने कहा कि अब नाम रूपी परवाना देकर यम से छुड़ा लो, अपना बना लो, और भी जो जीव मेरे घर में हैं, उन्हें भी नाम दो। तब साहिब उसके घर गये और सबको नाम दिया, आरती करने की विधि भी समझायी। सतयुग में साहिब ने चार हंसों को अमर लोक पहुँचाया।

त्रेतायुग में साहिब का आगमन

सतयुग गयो त्रेता आवा। नाम मुनींद्र जीव समुझावा।।
जब आयेउ जीवन उपदेशा। धर्मराय हित भयेउ अँदेशा।।
इन भवसागर मोर उजारा। जिव लै जाहि पुरुष दरबारा।।
परबस होय मौन सो गहिया। सोच विचार मनहिं मन रहिया।।

सतयुग बीतने पर त्रेतायुग में साहिब मुनींद्र जी के नाम से भवसागर में विख्यात हुए, जब जीवों को उपदेश देने लगे तो निरंजन को संदेह हुआ कि यह मेरी दुनिया उजाड़ देंगे, हंसों को परम पुरुष के पास ले जायेंगे।

त्रेतायुग जबही पगु धारा। मृत्यु लोक कीन्हों पैसारा।।
जीव अनेकन पूछा जाई। यम से को तुहि लेहि छुड़ाई।।
कहें भरम वश जीव अयाना। हमरा करता पुरुष पुराना।।
कोई विष्णु महेश की आस लगावें। कोई चण्डी देवी कहँ गावें।।
जो ग्रासे जिव सेवैं ताही। अनचीन्हे यम मुख में जाहीं।।

जैसे ही त्रेतायुग आया तो साहिब पुनः मृत्यु लोक आए, आकर बहुतों से पूछा कि तुम्हें काल से कौन बचायेगा! तब कोई कहता कि विष्णु जी हमें काल से छुड़ायेंगे, कोई कहता कि शिवजी छुड़ायेंगे, कोई कहता कि चण्डी देवी जी छुड़ायेंगी। भ्रमवश जीव उसी की भक्ति कर रहे थे, जो भक्षण करने वाला था और बिना सत्य की पहचान किये सब काल के मुख में जा रहे थे।

चहुँ दिशि फिरि आयेउँ गढ़ लंका। भाट विचित्र मिल्यो निःसंका।।
तिनि पुनि पूछेउ मुक्ति संदेशा। तासों कह्यो ज्ञान उपदेशा।।
सुना विचित्र तबहि भ्रम भागा। अति अधीन ह्वै चरणन लागा।।
कीजै मोहि कृतारथ आजू। मोरे जिवकर कीजे काजू।।

कह्यो ताहि आरति को लेखा। खेमसरिहि जस भाषेउ रेखा।।
तृण तोर बीरा तिहि दीन्हा। ताकै गृह में काहु न चीन्हा।।
सुमिरन ध्यान ताहि सो भाखा। पुरुष डोर गोय नहिं राखा।।

साहिब चारों दिशाओं में फिरकर लंका में आए तो विचित्र नाम का भाट मिला, उसने साहिब की बात को समझा और अधीन होकर चरणों पर गिर पड़ा, कहा कि मेरे जीव का आज कल्याण करो। तब साहिब ने उसे नाम दिया और खेमसरी की भाँति आरती करना बताया, ध्यान सुमिरन करना बताया।

तब विचित्र की स्त्री रानी मंदोदरी के पास गयी और कहा कि कोई साधु आया है, बहुत सुंदर है, श्वेत वस्त्र धारण किए हैं। ऐसा साधु कभी नहीं देखा। तब मंदोदरी आयी और देखकर चकित हुई, विनती की–

कहे मँदोदरी शुभ दिन मोरा। विनती करों दोई कर जोरा।।
ऐसा तपसी कबहुँ न देखा। श्वेत अंग सब श्वेतहि भेखा।।
हे समरथ मोहिं करहु सनाथा। भव बूडत गहि राखो हाथा।।

तब मंदोदरी ने विनती की, कहा कि ऐसा तपस्वी तो कभी नहीं देखा। वो प्रभावित हुई, कहा कि मुझे सनाथ करो, भवसागर में डुबने से बचा लो।

सुनहु वधू प्रिय रावण केरी। नाम प्रताप कटे यम बेरी।।
ज्ञान दृष्टि सो परखहु आई। खरा खोट तोहि देउँ चिन्हाई।।
पुरुष अमान अंजर मनि सारा। सो तो तीन लोक ते न्यारा।।
तेहि साहिब कहँ सुमिरे कोई। आवागमन रहित सो होई।।

साहिब ने मंदोदरी से कहा कि नाम की ताक़त से ही यम का बंधन कट सकता है। ज्ञान दृष्टि से परखो, तुम्हें अच्छे बुरे की पहचान बताता हूँ, जो सत्य पुरुष है, वो तीन लोक से न्यारा है, जो उस साहिब का सुमिरन करता है, उसका आवागमन मिट जाता है।

सुनतहि शब्द तासु भ्रम भागा। गह्यो शब्द शुचि मन अनुरागा।।

हे साहिब मोहि लीजे शरणा। मेटहु मोर जन्म अरु मरणा।।
दीन्हों ताहि पान परवाना। पुरुष डोर सौंप्यो सहिदाना।।

मंदोदरी ने जब साहिब के शब्द सुने तो उसका भ्रम दूर हो गया, उसका हृदय स्वच्छ हो गया और प्रेम उमड़ आया, उसने कहा–हे साहिब! मुझे अपनी शरण में लेकर जन्म मरण से दूर कर दो। तब साहिब ने उसे नाम दिया।

तब मैं रावण पहँ चलि आओ। द्वारपाल सों वचन सुनायो।।
तोसों एक बात समुझाई। राजा कहँ तुम आव लिवाई।।

साहिब तब रावण के महल में पहुँचे और द्वारपाल से कहा कि रावण को संदेश दो कि कोई साधु आया है, आकर उसे महल में ले आओ।

द्वारपाल ने कहा

द्वारपाल तब विनती लाई। महा प्रचण्ड है रावण राई।।
महागर्व अरु क्रोध अपारा। कहों जाय मोहि पल में मारा।।

द्वारापाल ने कहा कि रावण बड़ा प्रचण्ड है, शक्तिशाली है, उसमें बड़ा क्रोध और अभिमान भी है, यदि उससे ऐसी बात कहूँगा तो मुझे वहीं मार देगा।

साहिब ने कहा

मानहु वचन जाव यहि बारा। रोम बंक नहिं होय तुम्हारा।।
सत्य वचन तुम हमरा मानो। रावण जाय तुरत तुम आनो।।

साहिब ने कहा कि तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा, मेरा वचन सत्य मानो और तुरंत रावण को यह संदेश देकर आओ।

ततक्षण गा प्रतिहार जनायी। द्वै कर जोरे ठाढ रहाई।।
सिद्ध एक तो हम पहँ आई। तेकह राजहि लाव बुलाई।।

तभी द्वारपाल अन्दर गया और दोनों हाथ जोड़ रावण से कहा कि एक सिद्ध आया है, कहता है कि राजा रावण को बुलाओ।

सुन नृप क्रोध कीन्ह तेहि बारा। मैं मति हीन आहि प्रतिहारा।।
यहिमति ज्ञान हरों किन तोरा। जो तैं मोहि बुलावन दौरा।।
दर्श मोर शिवसुत नहिं पावत। मों कह भिक्षुक कहा बुलावत।।

रावण ने क्रोधित हो कहा–हे द्वारपाल! तेरी बुद्धि का किसने हरण कर लिया, जो तू मुझे बुलाने आया है, मेरा दर्शन शिवजी के पुत्र भी नहीं पा सकते, फिर तू मुझे कहने आया है कि भिक्षु बुला रहा है।

रावण चला शस्त्र लै हाथा। तुरत जाय तिहि काटों माथा।।
मारों ताहि सीस खसि परयी। देखों भुक्षुक मोर का करयी।।
जहँ मुनीन्द्र तहँ रावण राई। सत्तर बार अस्त्र कर लाई।।
लीन्ह मुनीन्द्र तृण कर ओटा। अति बल रावण मारै चोटा।।

रावण ने क्रोध में आकर हाथ में तलवार ली, सोचा, अभी उसका शीश काट देता हूँ, देखता हूँ कि वो मेरा क्या करता है। रावण ने आकर 70 बार तलवार चलायी, पर साहिब एक तिनके पर उसका वार रोक देते थे। रावण ने बड़े बल का प्रयोग किया, पर कुछ न बना।

तृण ओट यहि कारणे है, गर्व धारी राय हो।।
तेही कारणे यह युक्ति कीन्ही, लाज रावण आय हो।।

साहिब ने तिनके का सहारा इसलिए लिया, क्योंकि रावण बड़ा घमण्डी था, उसे शर्म आ सके, उसका घमण्ड चूर हो सके।

रावण को अमान करि, तब अवध नगरहि आय।
दशा संत की जान के, मधुकर पकरै पाय।।

रावण का घमण्ड तोड़ फिर साहिब अवध में आए, वहाँ मधुकर ब्राह्मण मिला, वो साहिब के चरण पकड़ उन के अधीन हुआ।

देख्यो ताहि बहुत लवलीना। तासों कह्यो ज्ञान को चीन्हा।।
पुरुष संदेश कहेउ तिहिं पासा। सुनत बचन जिय भयउ हुलासा।।

साहिब ने उसका प्रेम देखा ते उसे परम पुरुष का ज्ञान दिया, जिसे सुन वो बहुत प्रसन्न हुआ।

अंबु मिलत अंकर सुख माना। तैसहिं मधुकर सब्दहिं जाना।।
पुरुष भाव सुन तेहि हरषंता। मोकहँ लोक दिखावहु संता।।

जैसे जल मिलने से अंकुर फूटकर मानो अपनी खुशी प्रकट कर देते हैं, ऐसे ही मधुकर साहिब के शब्द सुन प्रसन्न हो गया और कहने लगा कि मुझे वो लोक दिखाओ

राख्यो देह हंस लै धाये। अमर लोक लैं तिहिं पहुँचाये।।
सोभा लोक देख हरषाना। तब मधुकर को मन पतियाना।।

तब साहिब उसकी आत्मा को शरीर से निकाल अमर लोक गये। अमर लोक की शोभा को देख वो बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे विश्वास हो गया।

इसके अतिरिक्त शृंगी ऋषि, वशिष्ठ मुनि, आदि सहित सात जीवों को साहिब ने त्रेता में तारा।

मधुकर जेते जीव, लोकहिं कीन्ह पयान।।
तातैं नाम मुनीन्द्र कहि, जीव सत्त दान।।

द्वापर में आए साहिब

द्वापर युग प्रवेश भा जबही। पुरुष अवाज़ कीन्ह पुनि तबही।।
ज्ञानी बेगि जाहु संसारा। यम सों जीवन करहु उबारा।।
काल देत जीव कहँ त्रासा। काटो जाय तिनहिं को फाँसा।।

द्वापर में पुनः परम पुरुष ने साहिब को बुलाकर कहा कि संसार में जाओ और काल से जीवों को छुड़ाओ, वो जीवों को कष्ट दे रहा है।

तब हम कहा पुरुष सों बानी। आज्ञा करहु शब्द परवानी।।
कालहिं मेटि जीव लै आवो। बार-2 का जगहिं सिधावो।।

साहिब ने तब परम पुरुष से कहा कि काल को मार सब जीवों को ले आता हूँ, बार-2 क्या भवसागर में जाना।

कहा पुरुष सुनो हो ज्ञानी। शब्द चिताय जीव मुक्तानी।।
जो अब कालहिं मेटो जाई। हो तबहिं मम वचन नसाई।।
सहज भाई जग प्रगटहु जाई। जब लग जीव काल बस भाई।।
हमसों तुमसों अन्तर नाहीं। जिमि तरंग जलमाहिं समाहीं।।
हम है तुमहि जो दुइकर जाना। ता घट जम सब करिहैं थाना।।
जाहु बेगि तुम वा संसारा। जीवन खेइ उतारहु पारा।।

परम पुरुष ने साहिब से कहा कि यदि अब काल को मिटाया तो मेरा शब्द कट जायेगा, इसलिए जब तक जीव काल के फंदे में हैं, तुम सहज

भाव से संसार में प्रगट होकर उन्हें चिताते रहो, मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं है, जो मुझमें और तुममें कोई अन्तर मानेगा, उसके अन्दर काल निवास करेगा। अच्छा, अब जल्दी से संसार में जाओ और जीवों की जीवन रूपी नैया खेवकर उन्हें पार लगाओ।

चले तब हम माथ नवायी। पुरुष आज्ञा जग माहिं सिधायी।।
करुणामय तब नाम धराया। द्वापर युग जब महि में आया।।

साहिब पुनः परम पुरुष की आज्ञा से उन्हें माथ नवाकर चले। जब धरती पर द्वापर युग आया, तब उनका नाम करुणामय हुआ।

गढ़ गिरनार तबहि चलि आये। चन्द्रविजय नृप तहाँ रहाये।।
ताको नारि रहै सयानी। पूजै साधु महातम जानी।।
तिन सुधि जब हमरी पाई। वृष ली अपनी दीन्ह पठाई।।
आई चेरी विनती कीन्हा। तुब दर्शन रानी चित्त दीन्हा।।

साहिब द्वापर में गिरनार में आए, वहाँ के राजा चन्द्रविजय की रानी साधु महात्माओं की महत्ता जानती थी। जब उसे साहिब के आने का पता चला तो अपनी दासी को साहिब को लाने भेजा। दासी ने आकर साहिब से रानी का सँदेश कहा कि रानी आपके दर्शन करना चाहती हैं।

तब ज्ञानी कहि वचन सुनावै। राज रावघर हम नहिं जावै।।
राज काज है मान बड़ाई। हम साधू नृप गृह नहिं जाई।।

साहिब ने उससे कहा कि हम राजा लोगों के घर नहीं जाते, उन्हें बड़ा अभिमान रहता है।

चलि वृषली रानी पहँ आयी। द्वै कर जोर विनय सुनायी।।
साधुन आवे मोर बुलाई। राज राव घर हम नहिं जाई।।
सुन इन्द्रमती उठि चलि आऊँ। कीन्ह दण्डवत टेके पाँऊ।।

दासी ने रानी के पास जाकर साहिब का सँदेश दिया। यह सुन रानी इन्द्रमती खुद आई और दण्डवत करके चरण स्पर्श किये।

इन्द्रमती ने कहा

हे साहिब मोपर करु दाया। मोरे गृह अब धारिये पाया।।

रानी ने कहा कि मेरे घर में चरण रखें।

साहिब कहते हैं

प्रीति देख हम भवन सिधारे। राजा घर तबहीं पग धारे।
कहे रानी चलु मंदिर मोरे। भयो सुखी दर्शन लिये तोरे।।

प्रीति देखि तेहि भवन सिधाये। दीन्ह सिंहासन चरण खटाये।।
दीन्ह सिंहासन चरण पखारी। चरण पर छालन अंगोछा धारी।।
चरण धोय पुनि राखे सिरानी। पट पद पोंछ जन्म शुभ जानी।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि रानी की प्रीत देख मैं उसके घर गया। रानी ने मुझे बैठने के लिए सिंहासन दिया, मेरे चरण धोये और अपने जन्म को सफल माना।

रानी ने कहा

पुनि प्रसाद को आज्ञा माँगी। हे प्रभु मोकहँ करहु सुभागी।।
जूठन परै मोर गृह माहीं। सीत प्रसाद लै हमहूँ खाहीं।।

फिर रानी ने साहिब से शीत प्रसाद की माँग की।

साहिब ने कहा

सुन रानी मोहि क्षुधा ना होई। पंच तत्व पावे जेहि सोई।।
अमृत नाम अहार है मोरा। सुनु रानी यह भाष्यो थोरा।।
देह हमारि तत्व गुण न्यारी। तत्व प्रकृति तिहिं काल रचिवारी।।
असी पंच किहु काल समीरा। पंच तत्व की देह खमीरा।।
तामह आदि पवन इक आही। जीव सोहं ग बीलियो ताही।।
यह जिव अहै पुरुष को अंशा। रोकसि काल ताहि दे संशा।।
नाना फंद रचि जीव गरासै। देइ लोभ तब जीवहि फाँसै।।
जिव तारन हम यहि जग आये। देइ लोभ तब जीवहि फाँसै।।
धर्मराय अस बाजी कीन्हा। धोक अनेक जीव कहँ दीन्हा।।
नीर पवन कृत्रिम किहु काला। विनशि जाय बहु करै बिहाला।।
तन हमार यहि साज ते न्यारा। मम तन नहिं सिरज्यो करतारा।।
शब्द अमान देह है मोरा। परखि गहहु भाष्यो कछु थोरा।।

साहिब ने रानी से कहा कि मुझे भूख नहीं लगती है, क्योंकि मेरी देही पंच तत्व की नहीं है; मैं तो अमृत का आहार ही करता हूँ। कहा कि

जीव परम पुरुष के अंश हैं, जिन्हें काल पुरुष ने अपने भम्र जाल में फँसाकर रोके रखा है। मैं जीवों को काल के फँदे से छुड़ाने आया हूँ। जो जीव मुझे पहचान कर मेरी शरण में आ जाते हैं, उन्हें मैं इस संसार से मुक्त करके ले जाता हूँ। काल ने जीवों को धोखे में रखा हुआ है। पवन, पानी आदि नाशवान तत्वों से देही का निर्माण किया है, पर मेरी देही इन चीज़ों से न्यारी है; मेरी शब्द की देही है। यह मैंने संक्षेप में थोड़ा बताया है, अब तुम इसे परख लो।

इन्द्रमती ने पूछा

हे प्रभु अस अचरज मोहि होई। अस सुभाव दूजा नहिं कोई।।
कौन आहु कहँवाते आये। तन अचिंत प्रभु कहँवा पाये।।
कौन नाम तुम्हरो गुरु देवा। यह सब वरण कहो मोहि भेवा।।
हम का जानहिं भेद तुम्हारा। ताते पूछों यह व्यवहारा।।

रानी ने कहा कि मुझे एक अचरज हो रहा है कि ऐसी देही तो और किसी की नहीं सुनी, इसलिए कृपा करके मुझे बताओ कि आप कहाँ से आए हैं, यह देही आपने कहाँ से पाई है, आपका नाम क्या है ! यह सब मुझे बताओ। मैं आपका भेद नहीं जानती हूँ, इसलिए यह सब पूछ रही हूँ।

इन्द्रमती कथा सुन सुहावन। तोहि समझाय कहों गुण पावन।।
देश हमार न्यार तिहुँ पुर ते। अहि पुर नर पुर अरु सुर पुर ते।
तहाँ नहीं यम केर प्रवेशा। आदि पुरुष को जहवाँ देशा।।
सत्य लोक की ऐसी बाता। कोटि शशि इक रोम लजाता।।
ऐसी पुरुष कांति उजियारा। हंसन शोभा कहों बिचारा।।
एक हंस जस षोडश भाना। अग्र वासना हंस अघाना।।
कहा कहों कछु कहत न आवे। धन्य भाग जे हंस सिधावे।।
ताहि देश ते हम चलि आये। करुणामय निज नाम धराये।।

सतयुग सत् सुकृत त्रेता मुनीद्र। द्वापर करुणामय नाम धराये।।
युगन युगन हम यहाँ चले आये। जो चीन्हा तहँ लोक पठाये।।

साहिब ने कहा कि मेरा देश तीन लोक से परे है, वहाँ यम प्रवेश नहीं कर सकता, वहाँ आदि पुरुष का निवास है। सत्य लोक की बात ऐसी है कि करोड़ों सूर्य चन्द्र उस परम पुरुष के मात्र एक रोम से लजा जाएँ और आत्मा का प्रकाश 16 सूर्यों का है। क्या कहूँ, वहाँ की बात कुछ कही नहीं जा सकती है; जो वहाँ पहुँचता है, उसका बड़ा भाग्य है। उसी देश से में आया हूँ और यहाँ आकर करुणामय नाम धराया है। वास्तव में मैं हर युग में आता हूँ; सतयुग में सतसुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र और द्वापर में करुणामय नाम से मैं यहाँ आया हूँ और जिसने मेरी बात को समझा, विश्वास किया, उसे मैंने वहाँ पहुँचाया है।

इन्द्रमती ने कहा

जोरि पाणि बोली बिलखायी। हे प्रभु यम ते लेहु छुड़ाई।।
राज पाट सब तुम पर वारों। धन सम्पति यह सब तजि डारों।।
देहु शरण मुहिं दीनदयाला। बंदिछोर मुहिं करहु निहाला।।

रानी ने साहिब से कहा–हे प्रभु! यम से छुड़ा लो। कहा कि यह राज पाट सब मैं तुम पर वार देती हूँ, यह धन-धौलत यह त्याग देती हूँ, मुझे अपनी शरण में लेकर काल के जाल से मुक्त कर दो।

साहिब ने कहा

इन्द्रमती सुन वचन हमारा। छोरों निश्चय बंदि तुम्हारा।।
चीन्हउ मोहि परतीत दृढ़ाना। अब देहुँ तोहि नाम परवाना।।
करहु आरती लेवहु परवाना। भागे यम तब दूर पयाना।।
चीन्हों मोहि करो परवाती। लेहु पान चलुभौ जल जीती।।
आनहु जो कछु आरति साजा। राजपाट कर मोहि ना काजा।।
धनसंपति कछु मोहि ना भावा। जीव चितावन यहि जग आवा।।
धन सम्पति तुम यहँवा लायी। करहु संत सम्मान बनायी।।

सकल जीव हैं साहिब केरा। मोह विविश जिव परे अंधेरा।।
सब घट पुरुष अंश कियो वासा। कहीं प्रगट कहिं गुप्त निवासा।।

साहिब ने रानी से कहा कि अब मैं तुम्हें काल से ज़रूर छुड़ाऊँगा, तुम्हें नाम दूँगा। इसलिए अब आरति का सामान लाकर आरति करो, जिससे यम दूर भाग जाए। मुझे राज पाट, धन धौलत से कुछ नहीं लेना। सब जीव साहिब के हैं और मोह वश इस संसार में पड़े हुए हैं, मैं उन्हें लेने आया हूँ।

इन्द्रमती ने कहा

इन्द्रमती सुन वचन अमानी। बोली मधुर ज्ञान गुण बानी।।
मोहि अधम को तुम सुख दीन्हा। तुव प्रसाद आगम गम चीन्हा।।
हे प्रभु चीन्ह तोहि अब पाहू। निश्चय सत्य पुरुष तुम आहू।।
सत्य पुरुष जिन लोक सँवारा। करेहु कृपा सो मोहि उदारा।।
आपन हृदय अस हम जाना। तुमते अधिक और नहिं आना।।
अब भाषहु प्रभु आरति भाऊ। जो चाहिय सो मोहि बताऊ।।

रानी ने कहा कि अब मुझे विश्वास हो गया है कि आप परम-पुरुष ही हैं। इसलिए अब मेरे लिए आपसे बड़ा और कोई नहीं है। कृपा करके अब मुझे बताएँ कि आरति के लिए क्या-क्या चाहिए।

साहिब ने कहा

हे धर्मन सो ताहि सुनावा। जस खेमसरी सो भाषेउ भावा।।
चौका कर लेवहु परवाना। पाछे कहों अपन सहिदाना।।
आनेउ सकल साज तब रानी। चौका बैठि शब्द ध्वनि ठानी।।
आरति कर दीन्हा परवाना। पुरुष ध्यान सुमिरण सहिदाना।।
उठि रानी तव माथ नवायी। ले आज्ञा परवाना पायी।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि जैसे मैंने खेमसरी को आरती बतायी थी, वैसे ही रानी को भी बतायी। रानी सब सामान लेकर आयी और आरती करके नाम लिया।

पुनि रानी राजहि समुझावा। हे प्रभु बहुरि न ऐसो दावा।।
गहो शरण जो कारज चाहो। इतना वचन मोर निरवाहो।।

रानी ने फिर राजा को भी समझाया कि साहिब की शरण में आ जाओ, कल्याण हो जायेगा।

राजा ने कहा

तुम रानी अरधंगी सोई। हम तुम भक्त होंय नहिं दोई।।
तोरि भक्ति कर देखो भाऊ। किहि विधि मोहि लेहु मुक्ताऊ।।
देखो तोरि भक्ति परतापा। पहुँचो लोक मिटे संतापा।।

राजा ने रानी से कहा कि तुम मेरी अंर्धांगिनी हो, तुम्हारी भक्ति के प्रताप से मेरा भी कल्याण हो जायेगा।

साहिब ने रानी से कहा

रानी बहुरि मोहि पहँ आई। हम तिहि काल चरित्र लखाई।।
सुन रानी इक वचन हमारा। कालहु कला करे छल धारा।।
तो कह शिष्य कीन हम जानी। डसे काल तच्छक ह्वै आनी।।
अब हम तोकहँ मंत्र लखाओं। काल गरल सब दूर भगाओं।।
दीन्हो शब्द विरहुली ताही। काल गरल जेहि व्यापे नाहीं।।
पुनि यम दूसर छल तोहि ठानी। सो चरित्र मैं कहों बखानी।।
छल कर यम आये तुम पासा। सो तुहि भेद कहों परगासा।।
हंस वर्ण वह रूप बनायी। हम सम ज्ञान तोहि समझायी।।
तुम सन कहे चीन्ह मुहिं रानी। मरदन काल नाम ममज्ञानी।।
यहि विधि काल ठगे तोहि आयी। काल रेख सब देउँ बतायी।।
मस्तक छोट काल कर जानू। चक्षु गुंजन को रंग बखानू।।
काल लक्षण मैं तोहि बतायी। और अंग सब सेत रहायी।।

रानी पुनः साहिब के पास आयी। तब साहिब ने उसे काल चरित्र समझाया, कहा–तुमने मेरा नाम ले लिया है, यह जान काल तुम्हें साँप

का रूप धारण कर डसेगा, इसलिए मेरा मंत्र याद रखो, काल का ज़हर नहीं चढ़ेगा। दूसरी बार पुनः काल हंस रूप बनाकर तुम्हें ठगने आयेगा, इसलिए मैं तुम्हें काल का रूप समझा देता हूँ, ताकि तुम उसे पहचान सको। उसका छोटा माथा होगा, काली आखें होंगी, बाकी अंग सफेद होंगे।

रानी चरण गहे तब धायी। हे प्रभु मोहि लोक लै जायी।।
यह तो देस काल कर थानी। हे प्रभु लै चल देस अमानी।।

रानी ने कहा कि यह तो काल का देश है, मुझे अपने लोक ले चलो।

तब रानी सों कहेउ बुझाई। बचन हमार सुनो चित लाई।।
जब लगि ठे का पूरे आई। तब लग रहो नाम लौ लाई।।

साहिब ने कहा कि आयु से पहले नहीं ले जाऊँगा तुम्हारा जीव, इसलिए जब तक आयु है, तब तक नाम में लौ लगाए रखो, जब पूरी होगी तो ले जाऊँगा।

गजरूपी है काल, केहरि पुरुष प्रताप है ।
रोक रहो तुम ढाल, काल खडग व्यापे नहीं।।

साहिब ने कहा कि काल हाथी की तरह है, पर परम पुरुष की नाम सिंह की तरह है, उसकी ढाल होगी तो काल कुछ नहीं कर पायेगा।

इतना कह हम गुप्त छिपाया। तक्षक रूप काल हो आया।।
जबहीं रात बीती आधी। रानी उठ चली सेवा साधी।।
सेज आय रानी पौढायी। डसेउ व्याल मस्तक मँह जायी।।

साहिब रानी को समझाकर गुप्त हो गये और इतने में काल साँप का रूप धारण कर आया। जब आधी रात बीत गयी तो रानी सेवा भक्ति करके अपने विस्तर पर आयी। तब काल ने उसे मस्तक में डस लिया।

इन्द्रमती ने कहा

इन्द्रमती अस वचन सुनायी। तक्षक डसेउ मोहि कहँ आयी।।
सुन राजा व्याकुल ह्वै धावा। गुणी गारुडी वेगि बुलावा।।

राय कहे मम प्राण पियारी। लेहु चिताय जो अबकी बारी।।
तक्षक गरल दूर हो आयी। देहुँ परगना तोहि दिवायी।।

इन्द्रमती ने राजा को पुकारा कि मुझे साँप ने डस लिया है। यह सुनकर राजा व्याकुल होकर दौड़ा हुआ आया और अच्छे वैद्य को बुलवाया। राजा ने कहा कि तुम मेरे प्राणों से भी प्यारी हो, तुम्हें नहीं जाने दूँगा, देखो, अभी सारा ज़हर दूर हो जायेगा।

इन्द्रमती ने कहा

मंत्र मोहि लखाय सतगुरु, गरल मोहि न लागई।।
होत सूर्य प्रकाश जेहि क्षण, अंध अघोर नशावई।।

रानी ने कहा कि मुझे सद्गुरु ने मंत्र दिया है, इसलिए मुझे ज़हर नहीं लगेगा। यह कह रानी साहिब के नाम का सुमिरन करती रही और कुछ ही देर में उठ बैठी।

विष्णु जी ने दूत को भेजा

कहे विष्णु सुनहो यमदूता। सतहि अंग करो तुम पूता।।
छल करि जाइ लिवाइय रानी। वचन हमार लेहु तुम मानी।।

विष्णु जी ने यमदूत को कहा कि तुम श्वेत अंग धारण कर रानी को छल कपट से ले आओ और हमारा बचन मानो।

दूत रानी के पास आया

कीन्हों दूत सेत सब अंगा। चलेउ नारि पहँ बहुत उमंगा।।
रानी सो अस वचन प्रकाशा। तुम कस रानी भई उदासा।।
जानि बूझि कस भई अचीन्हा। दीक्षा मंत्र तोहि हम दीन्हा।।
ज्ञानी नाम हमारो रानी। मरदो काल करौं पिसमानी।।
तक्षक काल होय तोहि खायी। तब हम राख लीन्ह तोहि आयी।।
छोड़ हु पलँग गहो तुम पाई। तजहु आपनी मान बड़ाई।।
अब हम लैन तोहि कहँ आवा। प्रभु के दर्शन तोहि करावा।।

यमदूत श्वेत अंग बनाकर आया और रानी से कहा–हे रानी! उदास क्यों बैठी हो, मैंने तो तुम्हें दीक्षा मंत्र दिया है, मेरा नाम ज्ञानी है। काल तुम्हें साँप रूप में डसने आया था, तब मैंने ही तुम्हारी रक्षा की थी। अब मैं तुम्हें लेने आया हूँ, चलो मेरे साथ।

रानी ने कहा

इन्द्रमती तब चीन्हेउ रेखा। जस कछु साहिब कहेउ विशेखा।।
तीनों रेख देख चक माहीं। जर्द सेत अरु राता आहीं।।
मस्तक ओछ देख पुनि ताको। भयो प्रतीत वचन को साको।।
जाहु दूत तुम अपने देसा। अब हम चीन्हेउ तुम्हरो भेसा।।
काग रूप जो बहुत बनाई। हंस रूप शोभा किमि पाई।।
तस हम तोरा रूप निहारा। ऐ समर्थ बड़ गुरु हमारा।।

तब रानी उसे पहचान गयी, क्योंकि साहिब ने उसे काल का रूप समझा दिया था कि उसका छोटा-सा मस्तक होगा, भँवरे की तरह काली आँखें होंगी। तो रानी ने कहा कि कौवे को हंस का रूप शोभा नहीं देता। हमारा गुरु बड़ा समर्थ है।

यह सुन काल निकट चलि आवा। इन्द्रमती पर थाप चलावा।।
थाप चलाय सुमुख पर मारा। रानी खसि परि भूमि मँझारा।।
इन्द्रमती तब सुमिरन लाई। हे गुरु ज्ञानी होउ सहाई।।

यह सुन काल ने इन्द्रमती को थप्पड़ मारा, जिससे रानी भूमि पर गिर पड़ी। इन्द्रमती ने साहिब को पुकारा कि रक्षा करो।

सुनत पुकार मुहि रहो न जाय। सुनहु धर्मनि यह मोर सुभाय।।
रानी जबहीं कीन्ह पुकारा। ततछन मैं तहाँ पगु धारा।।
देखत रानी भयी हुलासा। मन ने भाग्यो काल त्रासा।।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि जब कोई मुझे सच्चे दिल से पुकारता है तो मुझसे रहा नहीं जाता, यह मेरा स्वभाव है। तो रानी ने जब पुकार की तो मैं तुरंत वहाँ पहुँचा। मुझे देख रानी प्रसन्न हो गयी और काल का डर जाता रहा।

कह इन्द्रमती तब कर जोरी। हे प्रभु सुनो विनती मोरी।।
चीन्ह परी मोही यम की छाहीं। अब यहि देश रहब हम नाहीं।।
हे साहिब लै चलु निज देशा। इहवाँ बहु काल कलेशा।।

रानी ने दोनों हाथ जोड़कर विनती की, कहा–मुझे काल की बाधा समझ आ गयी है, इसलिए अब इस देश में नहीं रहूँगी, मुझे अपने देश ले चलो, यहाँ बहुत कष्ट है।

साहिब कहते हैं

प्रथमहि रानी कीन्हों संगा। मेट्यो काल कठिन परसंगा।।
तबहीं ठीक पूर भराया। ले रानी सत लोक सिधाया।।
ले पहुँचायो मानसरोवर। जहवाँ कामिनि करहिं कतोहर।।
अमी सरोवर अमी चखायी। सागर कबीर पाँव परायी।।
तेहि आगे सुरति को सागर। पहुँची रानी भई उजागर।।
लोक द्वार ठाढ तब कीनी। देखत रानी अति सुख भीनी।।
हंस धाय अंकम भर लीन्हा। गावहिं मंगल आरति कीन्हा।।
सकल हंस कीन्हा सनमाना। धन्य हंस सतगुरु पहिचाना।।
भल तुम छोड़े हु काल का फंदा। तुम्हरो कष्ट मिट्यो दुखद्वंदा।।
चलो हंस तुम हमरे साथा। पुरुष दरश कर नावहु माथा।।
इन्द्रमती आवहु संग मोरे। पुरुष दरश होवें अब तोरे।।
इन्द्रमती अरु हंस मिलाहीं। करहिं कुतूहल मंगल गाहीं।।
चलत हंस सब अस्तुति लावें। अब तो दरश पुरुष को पावें।
तब हम पुरुष सन बिनती लावा। देहु दरश अब हंस ढिग आवा।।
देहु दरश तिहिं दीनदयाला। बंदीछोर सु होहु कृपाला।।
बिकस्यो पुहुह उठा अस बानी। सुनहु योग संतायन ज्ञानी।।
हंसन कहँ अब आव लिवाई। दरश कराइ लेउ तुम आई।।

तब साहिब उसे अपने साथ अमर लोक ले गये। जब मानसरोवर, अमृत सरोवर, सुरति का सागर देखकर रानी अमर लोक पहुँची तो लोक की शोभा देख बहुत प्रसन्न हुई। सभी हंसों ने रानी का सम्मान किया, कहा कि तुमने सतगुरु को पहचाना, तुम धन्य हो, तुम्हारा कष्ट अब समाप्त हुआ। तब साहिब ने इन्द्रमती से कहा कि अब परम पुरुष के दर्शन को चलो। सभी हंस भी खुशी–2 साथ हो लिये कि अब परम पुरुष के दर्शन होंगे। तब साहिब के कहने पर परम पुरुष ने दर्शन दिये।

पुरुष कांति जब देखउ रानी। अद्भुत अमी सुधा की खानी।।
गदगद होय चरण लपटानी। हंस सुबुद्धि सुजन गुणज्ञानी।।

परम पुरुष की शोभा देख रानी गद्गद हो गयी और चरणों में लिपट गयी। परम पुरुष ने रानी से कहा कि करुणामय को बुला लाओ। जब रानी साहिब के पास आई तो देखकर चकित हो गयी कि साहिब ही परम पुरुष हैं, उनमें और परम पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। तब रानी ने कहा–

कह रानी यह अचरज आही। भिन्न भाव कछु देखों नाहीं।।
जो कोइ कला पुरुष कहँ देखा। करुणामय तन एक विसेखा।।
धाय चरण गह हंस सुजाना। हे प्रभु तव चरित्र सब जाना।।
तुम सतपुरुष दास कहलाये। यह शोभा कस उहां छिपाये।।
मोरे चित्त यह निश्चय आई। तुमहि पुरुष दूजा नहिं भाई।।

रानी ने कहा कि मुझे आपमें और परम पुरुष में कोई अन्तर नहीं दिखा, अब मैं आपका चरित्र समझ चुकी हूँ, आप सतपुरुष होकर दास कहलाते हैं और अपना असली रूप छिपाए रखते हैं, पर मुझे निश्चय हो गया है कि आप परम पुरुष ही हैं, अन्य नहीं हैं।

तब रानी ने राजा को भी वहाँ लाने की विनती की, कहा–वे काल के मुख में जा रहे हैं, उन्होंने मुझे कभी संतों की सेवा में रुकावट नहीं दी। तब विनती मान साहिब गढ़गिरनार में आए और राजा को लेकर अमर लोक पहुँचे।

साहिब धर्मदास से कहते हैं कि मैंने फिर पुनः संसार में आकर सुपच सुदर्शन को चेताया, नाम दिया। तब द्वापर का अंतिम समय था।

धर्मन पुनि आये जगमाहीं। रानी पति लै गये तहांहीं।।
राख्यो ताहि लोक मँझारा। ततछिन पुनि आयउ संसारा।।
काशी नगर कहाँ चलि आये। नाम सुदरशन सुपच जगाये।।

रानी के पति को वहाँ पहुँचाकर साहिब फिर संसार में आए और काशी नगर के सुपच को जगाया। वो बड़ा भक्त हुआ। जब पाण्डव कौरव युद्ध समाप्त हुआ तो कृष्ण ने पाण्डवों को बन्धुओं को मारने के अपराध में यज्ञ करने को कहा। यज्ञ में आकाश में एक घण्टा स्थित किया गया, कृष्ण ने कहा–

पाण्डव प्रति बोले यदुपाला। पूरन यज्ञ जान तिहिं काला।।
घण्ट अकाश बजत सुनि आवे। यज्ञ को फल पूरन पावे।।
भोजन विविध प्रकार बनाई। परम प्रीति से सबहिं जेबाई।।
इच्छा भोजन सब मिलि पावा। घंट नहिं बाजा राय लजावा।।
भोजन कीन सकल ऋषि राया। बजी न घंट भूप भ्रम आया।।

कृष्ण ने कहा कि यदि घण्टा बजा तो समझना कि यज्ञ सफल हुआ।

यज्ञ हुआ, सभी ब्राह्मणों, ऋषियों–मुनियों, संयासियों को भोजन करवाया गया, पर घण्टा नहीं बजा। तब राजा लज्जित हुआ और कृष्ण के पास सब पाण्डव गये और पूछा–

करिके कृपा कहो यदुराजा। कारण कौन घंट नहिं बाजा।।
कृष्ण अस कारण तासु बताया। साधू कोई न भोजन पाया।।

पाण्डवों ने कृष्ण से पूछा कि घण्टा क्यों नहीं बजा, तो कृष्ण जी ने कहा कि किसी साधू ने भोजन नहीं किया है।

चकित भै तब पाण्डव कहे ई। कोटिन साधु भोजन लहे ऊ।।
अब कहँ साधु पाइय नाथा। तिनते तब बोले यदुनाथा।।

सुपच सुदर्शन को लै आवो। आदर मान सहित जिमावो।।
सोई साधु और न कोई। पूरन यज्ञ जाहि ते होई।।

पाण्डवों ने कहा कि कई साधुओं को भोजन करवाया गया, आपने भी किया और कह रहे हो कि कोई साधु भोजन नहीं किया, अब साधु कहाँ से पाएँ! तब कृष्ण जी ने कहा कि सुपच सुदर्शन के अलावा कोई सच्चा साधु नहीं है, यदि उसे आदर सहित बुलाकर भोजन करवाओ तो तुम्हारा यज्ञ सफल होगा। तब उसे लाया गया और उसे भोजन खिलाया गया।

सुपच भक्त ग्रास उठावा। बाजो घण्ट नाम परभावा।।
भूप भवन भोजन कर जबहीं। बजा अकाश में घण्टा तबहीं।।

तब सुपच ने भोजन खाया तो आकाश में घण्टा बजा और यज्ञ सफल हुआ।

....निरंजन को दिये वचनानुसार साहिब ने तीन युग तक थोड़े-2 जीव अमर लोक पहुँचाए, पर कलयुग में उनके लाखों शिष्य हुए।

तीन लोक से बाहर देशा। तेहि साहिब का सुनो संदेशा॥
तेहि साहब की मोहि साहिदानी। तिनकी आदि कृष्ण नहि जानी॥

साहिब और धर्मदास

पुरुष अवाज़ उठी तिहि बारा। ज्ञानी बेग जाहु संसारा।।
जीवन काज अंश पठवायी। सुकृत अंश जग प्रगटे जायी।।
दीन्ह आज्ञा तेहि को भाई। शब्द भेद वाही समझायी।।
लावहु जीवन नाम अधारा। जीवन खेइ उतारो पारा।।
सुनत आज्ञा वहि कीन पयाना। बहुरि न आये देश अमाना।।
सुकृत भवसागर चलि गयऊ। काल जाल ते सुधि बिसरयऊ।।
तिन कहँ जाय चितावहु ज्ञानी। जेहिते पंथ चले निरवानी।।
बंस ब्यालिस अंस हमारा। सुकृत गृह लैहैं औतारा।।
ज्ञानी बेगि जाहु तुम अंसा। अब सुकृत अंश कर मेटहु फंसा।।

तो कहा कि तब हम परम पुरुष की आज्ञा से तुम्हारे पास आए।

धर्मदास तुम सुकृत अंशा। जा कारण हम कीन्ह बहु संसा।।
पुरुषहिं आज्ञा तुम्हरे ढिग आये। पिछली हेत पुनि याद कराये।।
दश औतार ईश्वरी माया। यह सब देख काल की छाया।।
तुम जग जीव चितावन आये। काल फन्द तुम आइ फँसाये।।
अबहूँ चेत करो धर्मदासा। पुरुषहिं शब्द करो परकासा।।
ले परवाना जीव चिताओ। काल जाल ते हंस मुक्ताओ।।

साहिब ने कहा–हे धर्मदास! तुम मेरे अंश हो, परम पुरुष ने तुम्हें जीवों को चिताने संसार में भेजा था, पर तुम काल के फँदे में फँस गये और भूल गये। अब नाम लो और जीवों को चिताओ।

धर्मदास ने पूछा

कलियुग केर कहो परभाऊ। और हंस परमोधेउ काउ॥
सो मोहि वरण कहो गुरु देवा। कौन जीव कीन्ही तुम सेवा॥

धर्मदास जी ने कलयुग के अन्य जीवों के बारे में पूछा, जिनपर साहिब ने उनके द्वारा कृपा की।

धर्मदास ने विनती की

धन सतगुरु तुम मोहि चेतावा। काल फंद ते मोहि मुकतावा।।
मैं किंकर तुम दास के दासा। लीन्हों मोरि काटि जम फाँसा।।
मैं अघकर्मी कुटिल कठोरा। रहेउ अचेत भ्रम जिव मोरा।।
कहा जानि तुम मोहि जगाये। कौने तप हम दर्शन पाये।।

धर्मदास जी ने कहा कि मैं तो कठोर हृदय का था, बुरा इंसान था, अचेत था, फिर क्या सोचकर आपने मुझे जगाया!

साहिब ने कहा

इच्छा कर जो पूछो मोही। अब मैं गोइ न राखों तोही।
धर्मन सुनहु पाछली बाता। तोहि समझाय कहो विख्याता।।
संत सुदर्शन द्वापर भयऊ। तासु कथा तोहि प्रथम सुनयऊ।।
तेहि ले गयो निज जबहीं। विनती बहुत कीन तिन तबहीं।।
कहे सुपच सतगुरु सुन लीजे। हमरे मात पिता गति दीजे।।
बंदीछोर करो प्रभु जाई। यम के देश बहुत दुख पाई।।

साहिब ने कहा कि द्वापर के सुपच सुदर्शन की कथा तुम्हें मैंने सुनाई थी। जब मैं उसे अमर लोक ले गया तो उसने मुझसे प्रार्थना की कि मेरे माता-पिता को भी नाम दो, अमर-लोक ले चलो। मैंने उन्हें बहुत समझाया पर वे माने नहीं, नाम नहीं लिया। तब सुपच की विनती सुन मैंने कहा कि मैं इन्हें पार ज़रूर उतारूँगा। अगले जन्म में वे सुपच के प्रभाव से ब्राह्मण-ब्राह्मणी हुए, फिरसे मानव देही मिली। उनको पुत्र नहीं था, वो सूर्य से पुत्र माँग रही थी, इतने में मैं झोली में आकर गिर पड़ा। उसने सोचा कि सूर्य ने पुत्र दे दिया....घर ले आई।

संत सुदर्शन नाम प्रतापा। मानुष देह विप्र के छापा।।
दोनों जन्म दोय तब लीन्हा। पुनि विधि मिलै ताहि कहँ दीना।।
कुलपति नाम विप्र कर कहिया। नारी नाम महे सरि रहिया।।

बहुत अधीन पुत्र हित हारी। करी अस्नान सूर्य व्रतधारी।।
अंचल लै विनवै कर जोरी। रुदन करे चित सुत कह दौरी।।
तत्क्षण हम अंचल पर आवा। हम कहँ देखि नारि हरषावा।।
बाल रूप धरि भेंट्यो वोही। विप्र नारि गृह लै गइ मोही।।
कहै नारि कृपा प्रभु कीना। सूर्य व्रत कर फल यह दीना।।

अब मैं उन्हें समझाने लगा, पर वे माने नहीं, तो मैं गुप्त हो गया।

पुनि हम सत्य शब्द गोहराई। बहु प्रकार ते उनहिं समझाई।।
ता हृदय नहिं शब्द समायी। बालक जान प्रतीत न आयी।।
ताहि देह चीन्हसि नहिं मोहीं। भयो गुप्त तहँ तन तज वोही।।

तो फिर दूसरे जन्म में वे शाह-शाहनी हुए, चन्दन और ऊदा उनके नाम हुए।

नारी द्विज दोई तन त्यागा। दरश प्रभाव मनुज तन जागा।।
ऊदा नाम नारी कहँ भयऊ। पुरुष नाम चंदन धरिगयऊ।।
परसोतमते हम चलि आये। तह चंदवारा जाइ प्रगटाये।।
बालक रूप कीन्ह तेहि ठामा। किन्हउ ताल माहिं विश्रामा।।
कमल पत्र पर आसन लाई। आठ पहर हम तहाँ रहाई।।
पीछे ऊदा अस्नानहि आयी। सुन्दर बालक देखि लुभायी।।
दरश दियो तेहि शिशुतन धारी। ले गई बालक निज घर नारी।।

तब मैं उनके गाँव आया और समीप के सरोवर में प्रगट हुआ। एक दिन वहीं रहा। सुबह जब नारी स्नान करने आई तो सुंदर बालक देख मोहित हुई और घर ले आई।

कह चन्दन के मूरख नारी। वेगि जाहु दै बालक डारी।।
जाति कुटुंब हँसिहैं सब लोगा। हँसत लोग उपजै तन सोगा।।

चंदन ने कहा कि यह किसे उठा लाई हो, जाओ वापिस छोड़ आओ, नहीं तो लोग हँसी करेंगे। तब चंदन के डर से ऊदा मुझे वापिस छोड़ने जा रही थी।

चलि भइ मोहि पवांरन जबहीं। अन्तरधान भयो मैं तबहीं।।
भयउ गुप्त तेहि करसे भाई। रुदन करें दोनों बिलखाई।।
बिकल होय बन डोलैं। मुग्ध ज्ञान कछू मुख नहिं बोलैं।।

तब मैं उसके हाथ से लुप्त हो गया। यह देख दोनों रोने लगे, बन-बन मुझे ढूँढने लगे, पर मैं न मिला। फिर अगले जन्म में वे ही नीरू-नीमा हुए। तब मैं काशी के लहरतारा तालाब में नीमा को मिला। नीरू के डर से वहाँ भी नीमा मुझे छोड़ने जा रही थी तो मैंने कहा-

प्रीत पिछली कारणे, तोहि मिला हूँ आप।
मुक्ति संदेश सुनाऊँगा, ले चल अपने साथ।।

वे नीरू नीमा सुपच के माता-पिता थे, जो तीसरे जन्म में नीरू-नीमा हुए। पर बालक जान तब भी उन्हें विश्वास न हुआ। फिर चौथे जन्म में मथुरा में जाकर साहिब ने उन्हें समझाया और उन्होंने नाम ले लिया और पार हुए।

ताहि देह पुनि मोहि न चीन्हा। जानि पुत्र मोहि संग न कीन्हा।
तजि सो देह बहुरि जो भाई। देह धरी सो देहुँ चिन्हाई।।
जुलहा की तब अवधि सिरानी। मथुरा देह धरी तिन आनि।।
हम तहँ जाय दरश तिन दीन्हा। शब्द हमार मान सों लीन्हा।।
रतना भक्ति करे चितलाई। नारि पुरुष परवाना पाई।।
ता कहँ दीन्हे उ लोक निवासा। अंकूरी पठये निज दासा।।
पुरुष चरण भेटे उर लाई। शोभा देह हंस कर पाई।।
देखत हंस पुरुष हरषाने। सुकृत अंश कही मन माने।।
बहुत दिवस लगि लोक रहाये। तब लगि काल जीव संताये।।

तो मैं उन्हें अमर लोक ले गया। कुछ समय वे वहाँ रहे, फिर परम पुरुष ने नीरू को जीवों को चिताने संसार में भेजा। पर काल ने उसे अपने जाल में फँसा लिया।

जीवन दुख अतिशय भयो भाई। तबहीं पुरुष सुकृत हंकराई।।
आज्ञा कान्ह जाहु संसारा। काल अपर बल जीव दुखारा।।
लोक संदेशा ताहि सुनाओ। देइ नाम जीवन मुकताओ।।
आज्ञा सुनत सुकृत हरषाये। तुरतहिं लोक पयाना लाये।।
सुकृत देख काल हरषाई। इन कहँ तो हम लेब फँसाई।।
करि उपाय बहुत तब काला। सुकृत फँसाय जाल महँ डाला।।
बहुत दिवस गयो जब बीता। एकहु जीव न कालहिं जीता।।
जीव पुकार सतलोक सुनाये। तबहीं पुरुष मोकहँ हंकराये।।

तब परम पुरुष ने मुझसे कहा कि उसे चेताओ, इसलिए परम पुरुष की आज्ञा से मैं आया हूँ।

पुरुष अवाज़ उठी तिहि बारा। ज्ञानी बेग जाहु संसारा।।
जीवन काज अंश पठवायी। सुकृत अंश जग प्रगटे जायी।।
दीन्ह आज्ञा तेहि को भाई। शब्द भेद वाही समझायी।।
लावहु जीवन नाम अधारा। जीवन खेइ उतारो पारा।।
सुनत आज्ञा वहि कीन पयाना। बहुरि न आये देश अमाना।।
सुकृत भवसागर चलि गयऊ। काल जाल ते सुधि बिसरयऊ।।
तिन कहँ जाय चितावहु ज्ञानी। जेहिते पंथ चले निरवानी।।
बंस ब्यालिस अंस हमारा। सुकृत गृह लैहैं औतारा।।
ज्ञानी बेगि जाहु तुम अंसा। अब सुकृत अंश कर मेटहु फंसा।।

तो कहा कि तब हम परम पुरुष की आज्ञा से तुम्हारे पास आए। तुम नीरू के अवतार हो।

चलेउ हम तब सीस नवाई। धर्मदास हम तुम लग आई।।
धर्मदास तुम नीरू औतारा। आमिन नीमा प्रगट विचारा।।
तुम तो आहू प्रिय मम अंशा। जा कारण हम कीन्ह बहु संसा।।
पुरुषहिं आज्ञा तुम्हरे ढिग आये। पिछली हेत पुनि याद कराये।।

यहि संयोग हम दर्शन दीन्हा। धर्मनि अबकी तुम मोहि चीन्हा।।
पुरुष अवाज कहूँ तुम पासा। चीन्हहु शब्द गहो विश्वासा।।

साहिब ने कहा–हे धर्मदास! तुम मेरे अंश हो, परम पुरुष ने तुम्हें जीवों को चिताने संसार में भेजा था, पर तुम काल के फँदे में फँस गये और भूल गये। इस कारण हमने तुम्हें दर्शन दिया है, अब विश्वास करो और शब्द की डोर पकड़ो।

धाय परे चरनन धर्मदासा। नैन बारि भर प्रगट प्रगासा।।
धरहिं न धीर बहुर संतोखा। तुम साहिब मेटहु जिव धोखा।।
धरै न धीरज बहुत प्रबोधे। बिछरि जननि जिमि मिल्यो अबोधे।।
युग पग गहे सीस भुई लाये। निपट अधीर न उठत उठाये।।
बिलखत बदन वचन नहिं बोले। सुरति चरण ते नेक न डोले।।

धर्मदास जी की आँखों में प्रेम के आँसू बह चले, वे तो ऐसे हो गये मानो किसी अबोध बालक को बिछुड़ी हुई माँ मिल गयी हो, कुछ बोल न पाए और साहिब के चरणों में लेट गये, उठाये न उठते थे।

बहुरि चरन गहि रोवहिं भारी। धन्य प्रभु मोहि तारन तन धारी।।
धरि धीरज तब बोल सम्हारी। मोकहँ प्रभु तारन पगधारी।।
अब प्रभु दया करहु यहि मोहि। एकौ पल न बिसरों तोही।।
निशिदिन रहों चरन तुम साथा। यह बर दीजे करहु सनाथा।।

फिर धैर्य धारण कर कहने लगे कि हे साहिब! मुझपर कृपा करना, मुझे एक पल भी बिसरना नहीं। फिर कहा–

धन सतगुरु धन तुम्हरी बानी। मुहिं अपनाय दीन्ह गति आनी।।
मोहि आय तुम लीन्ह जगायी। धन्य भाग्य हम दर्शन पायी।।
काल जाल जौनी विधि छूटे। यम बन्धन जौनी विधि टूटे।।
सोई उपाय प्रभु अब कीजे। सार शब्द बताय मोहि दीजे।।

कहा कि मेरा बड़ा भाग्य है कि आपने दर्शन दिये, अब मुझे सार शब्द बताकर काल से छुड़ा लो। तब साहिब ने उसे नाम देकर समझाया–

धर्मदास तुम सुकृत अंशा। लेइ पान अब मेटहु संशा।।
धर्मदास आपन करि लेऊँ । चौका करि परवाना देऊँ ।।
तिनका तुड़ाय लेहु परवाना। काल दशा छूटे अभिमाना।।
शालिग्राम को छाड़हु आसा। गहि सत शब्द होहु तुम दासा।।
दश औतार ईश्वरी माया। यह सब देख काल की छाया।।
तुम जग जीव चितावन आये। काल फन्द तुम आइ फँसाये।।
अबहूँ चेत करो धर्मदासा। पुरुषहिं शब्द करो परकासा।।
ले परवाना जीव चिताओ। काल जाल ते हंस मुक्ताओ।।

कहा–दस अवतार भी माया का खेल था, इसलिए शालिग्राम की आशा छोड़ दो और नाम को पकड़ो, दूसरे जीवों को भी चिताओ। साहिब ने नाम का परवाना देकर धर्मदास को समझाया–

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। सत्य भेद मैं कियो परकासा।।
अब सुनु रहन की बाता। बिन जाने नर भटका खाता।।
पहिले कुल मरजादा खोवे। भय ते रहित भक्ति तब होवे।।
सेवा करो छाड़ि मत दूजा। गुरु की सेवा गुरु की पूजा।।
गुरु से करे कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमें आई।।
ताते गुरु से परदा नाहीं। परदा करे रहे भवमाहीं।।
गुरु के वचन सदा चित दीजे। माया मोह सु कोर न भीजे।।
यहि रहनी भव बहुरि न आवे। गुरु के चरण कमल चित लावे।।

कहा–गुरु की भक्ति करो, उनसे छल-कपट मत करो, स्पष्ट बात करो, कुछ छिपाओ नहीं, उनके वचनों को हृदय में धारण करो, उनके चरणों में चित्त लगाए रहो। जब तक जीवन है, तब तक गुरु की आज्ञा को देखते चलो।

जब लग तन में हंस रहाई। निरखे शब्द चले पथ भाई।।
गुरु मुख जीव कतहु न बाचै। अग्नि कुण्ड महँ जबरि नाचै।।

गुरु दयाल तो पुरुष दयाला। जेहि गुरु व्रत छुए नहिं काला।।
कोटिक योग अराधे प्राणी। सतगुरु बिन जीव की हानी।।
सतगुरु अगम गम्य बतलावे। जाकी गम्य वेद न पावे।।
कोटि माहिं कोइ संत विवेकी। जो मम बानी गहे परे खी।।

साहिब ने धर्मदास को गुरु पूजा का महात्म बताया, कहा–जब तक शरीर में आत्मा रहे, गुरु के वचन को देखते चलो। गुरु के प्रसन्न होने से ही सतपुरुष प्रसन्न होते हैं। चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न कर ले, बिना गुरु के हानि ही होगी। करोड़ों में कोई एक विवेकी संत ही मेरी बानी को समझता है। पर गुरु वो, जिसके पास गुप्त नाम(शब्द) हो। फिर साहिब ने उसे नाम का महात्म बताते हुए कहा–

कल यहि नाम प्रताप धर्मन, हंस छूटे काल सो।
सत्त नाम मन बिच दृढ़ गहे, सो निस्तरे यम जाल सो।।
यम तासु निकट न आवई, जेहि वंश की परतीत हो।
कलिका के सिर पाँव दै, चले भवजल जीति हो।।

साहिब ने उसे यह भी समझाया कि गुरु गद्दी शब्द पुत्र को ही देनी है, बीज पुत्र को नहीं देनी है। यानी शरीर से उत्पन्न बेटे को नहीं देनी है, शब्द द्वारा बनाए गये बेटे को देनी है।

कहँ निर्गुण कहँ सगुण भाई। नाद बिना नहिं पंथ चलाई।।
धर्मनि नाद पुत्र तुम मोरी। ताते दीन्ह मुक्ति का डोरा।।

कहा–सगुण-निर्गुण सब भक्तियों में भी शब्द पुत्र से ही पंथ चलता है। तुम मेरे शब्द पुत्र हो, इसलिए तुम्हें जीवों की मुक्ति के लिए नाम की डोरी सौंपी है।

धर्मदास ने पूछा

अब प्रभु दया करो तुम ज्ञानी। वचन वंश प्रगटे जग आनी।।
आगे जेहिते पन्थ चलाई। तेहिते करौं विनती प्रभुराई।।

धर्मदास ने पूछा कि अब मेरा वंश कैसे चलेगा!

साहिब ने कहा

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। दशै मास प्रगटै जिव कासा।।
तुम गृह आय लेहि अवतारा। हंसन काज देह जग धारा।।
धर्मदास सुनु शब्द सिखापन। कहों सँदेश जानि हित आपन।।
वस्तु भंडार दीन तुम पांही। सौंपहु वस्तु बतावहु ताही।।
अब जो होइ हैं पुत्र हमारा। सो तो होइ हैं अंश हमारा।।

साहिब ने कहा कि 10 महीने बाद तुम्हारे घर में एक अवतार होगा, जो वस्तु मैंने तुम्हें दी है, वही तुम उसे देना, वो जो तुम्हारा पुत्र होकर आयेगा, वो मेरा ही अंश होगा।

धर्मदास अस विनती लायी। हे प्रभु मोकहँ कहु समझाई।।
हे पुरुष हम इन्द्री वश कीन्हा। कैसे अंश जनम जग लीन्हा।।

धर्मदास ने कहा कि अब तो मैंने इन्द्री वश में की है, अब कैसे होगा। तब साहिब ने उसे समझाया कि वो नाद पुत्र होगा।

तब आयसु साहब अस भाखे। सुरति निरति करि आज्ञा राखे।।
पारस नाम धर्मनि लिखि देहू जाते अंश जन्म सो लेहू।।
लखहु सैन मैं दऊँ लखाई। धर्मदास सुनियो चितलाई।।
लिखो पान पुरुष सहिदाना। आमिन देहु पान परवाना।।

साहिब ने कहा कि अपनी स्त्री को नाम दो। तब धर्मदास जी की शंका समाप्त हुई और उन्होंने आमिन को बुलवाकर साहिब के चरण पकड़ने को कहा, पारस नाम दिया। इस तरह सुरति से गर्भवास हुआ और चूरामणि साहिब प्रगट हुए।

तब गयउ धर्मदास कह शंका। दृष्टि समीप कीन्हा परसंगा।।
धर्मदास आमिन हँ करावा। लाय खसम के चरन परावा।।
पारस नाम पान लिख दीन्हा। गरभवास आसा सा लीन्हा।।

रति सुरति सो गरभ जो भयऊ। चूरामनि दास बास तहँ लयऊ।।
धरमदास परवाना दीन्हा। आमिन आय दंडवत कीन्हा।।
दसों मास जब पूजी आसा। प्रगटे अंश चूरामणि दासा।।

तब साहिब उसके घर गये और कहा कि अब तुम्हारे 42 वंश होंगे। फिर उनकी शाखाएँ, परशाखाएँ होंगी, सकल जीवों को वे तारेंगे।

तुमते वंश बयालिस होई। सकल जीवकहँ तारैं सोई।।
तिनसों साठ होइ हैं शाखा। तिन शाखन ते होइ हैं परशाखा।।
दश सहस्र परशाख तुम ह्वै हैं। वंशन साथ सबै निरनहिहैं।।
नाता जान करे अधिकाई। ताकहँ लोक बदों नहिं भाई।।
जस तुम्हार हुइ है कडिहारा। तैसे जानो साख तुम्हारा।।

कहा कि 42 वंश से आगे 360 शाखाएँ होंगी, फिर उसकी 10 हज़ार परशाखाएँ होंगी। जैसे मैंने तुम्हें नाम परवाना सोंपा है, वैसे ही तुम्हारे वंशों को भी सौंपा जायेगा। वो सब नाद पुत्र होंगे, शब्द पुत्र होंगे।

ताते तोहि कहौं समझाई। अपने वंसन देहु चिताई।।
नाद पुत्र जो परगट होई। ताको मिलै प्रेम से सोई।।
तुमहू नाद पुत्र मम आहू। यह मन परखहु धर्मनि साहू।।
कमाल पुत्र जो मृत्र जियावा। ताके घट में दूत समावा।।
पिता जानि तिन आहंग कीन्हा। तब हम थाति तोहि कहँ दीन्हा।।
हम हैं प्रेम भगति के साथी। चाहों नहीं तुरी औ हाथी।।
प्रेम भक्ति से जो मोहिं गहिहैं। सो हंस मम हृदय समैहैं।।
अहंकारते होतेऊ राजी। तौ मैं थापत पंडित काजी।।
अधीन देखि थाति तेहि दीना। देखेउ जब तोहिउँ प्रेम अधीना।।
ताते धरमनि मानु सिखाई। नाप थाती सौंपिहु भाई।।
नाद पुत्र कहँ सौंपिहु सोई। पंथ उजागर जासों होई।।
बंस करिहैं अहंकार बहूता। हम हैं धर्मदास कुल पूता।।

जहाँ हंग तहवाँ हम नाहीं। धरमदास देखु परखि मन माहीं।।
जहाँ हंग तहँ काल सरूपा। नहिं पावे सत लोक अनूपा।।

साहिब ने समझाया कि शब्द पुत्र को ही गद्दी सौंपनी है। कमाल को मैंने जीवित किया था, पर उसने अंहकार किया, मुझे पिता माना, इसलिए मैंने नाम का परवाना तुम्हें सोंपा, उसे नहीं। हे धर्मदास! मैं प्रेम का भूखा हूँ, मुझे हाथी-घोड़े नहीं चाहिएँ। यदि अंहकार से मैं अधीन होता तो पंडित-काजियों को यह काम सौंप देता। जहाँ अंहकार है, वहाँ हम नहीं, काल है, इसलिए वो जीव अमर लोक नहीं जा सकता।

धर्मदास का बेटा नारायणदास साहिब का निंदक था, उसने नाम नहीं लिया, साहिब ने कहा कि यह काल का बंदा है, इसे त्याग दो, पर धर्मदास बार-बार साहिब से प्रार्थना करते कि उसे भी नाम दो, तब साहिब ने उससे कहा कि तुम पुत्र मोह में नहीं पड़ो, गुरुमुख बनो। साहिब ने उसे समझाया-

गुरु आज्ञा जो निरखत रहई। ताकर खूट काल नहिं गहई।।
गुरु पद रहे सदा लौ लीना। जैसे जलहि न बिसरत मीना।।
गुरु के शब्द सदा लौ लावे। सत्य नाम निसदिन गुण गावे।।
पुरुष नाम को अस परभाऊ। हंसा बहुरि न जगमहँ आऊ।।
निश्चय जाय पुरुष के पासा। कूर्म कला परखहु धर्मदासा।।

इसलिए-

जब लग तन में हंस रहाई। निरखे शब्द पंथ चले भाई।।
जैसे शूर खेत रह मांडी। जो भागे तो होवे भांडी।।
संत खेत गुरु शब्द अमोला। यम तेहि गहे जीव जो डोला।।
गुरु विमुख जिव कतहुँ न बाचै। अग्नि कुंड महँ जरि बरि नाचै।।
सासति होय अनेकन भाई। जनम जनम सो नर्कहि जाई।।

* * * * * * * *

गुरु दयाल तो पुरुष दयाला। जेहि गुरुमुख छुए न काला।।
जीव कहो परमारथ जानी। जो गुरु भक्त ताहि नहिं हानी।।
कोटिक योग अराधे प्रानी। सतगुरु बिन जीव की हानी।।
सतगुरु अगम गम्य बतलावे। जाकी गम्य वेद नहिं पावे।।
वेद जाहि ते ताहि बखाने। सत्य पुरुष का मरम न जाने।।
कोई इक हंस विवेकी होवे। सत्य शब्द जो गही बिलोवे।।
कोटि माहिं कोइ संत विवेकी। जो मम वानी गहे परेखी।।
फंदे सबै निरंजन फंदा। उलटि न निज घर चीन्हे मंदा।।

* * * * * * * *

गुरु गुरुन में भेद विचारा। गुरु-2 कहे सकल संसारा।।
गुरु सोइ जिन शब्द लखाया। आवागमन रहित दिखलाया।।
गुरु सजीवन शब्द लखावे। जाके बल हंसा घर जावे।।
सो गुरु सों कछु अन्तर नीहीं। गुरु औ शिष्य मता एक आहीं।।

कहा–यदि ऐसा गुरु मिल जाए तो उसमें और परम पुरुष में कोई अन्तर नहीं मानना।

अनुरागसागर ग्रंथ कथि तोहि अगम गम्य लखाइया।।
पुरुष लीला काल को छल सबै वरनि सुनाइया।।
रहनि गहनि संत की, जौहरी जन बूझिहैं।।
परखि बानी जो गहे, तेहि अगम मारग सूझिहैं।।

आरती

जय सद्गुरु देवा, स्वामी जय सद्गुरु देवा,
सब कुछ तुम पर अर्पण करहूँ पद सेवा।

जय गुरुदेव दया निधि, दीनन हितकारी, स्वामी भक्तन हितकारी,
जय जय मोह विनाशक, जय जय तिमिर विनाशक, भय भंजन हारी। स्वामी जय...

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, गुरु मूरति धारी, स्वामी प्रभु मूरति धारी,
वेद पुराण बखानत, शास्त्र पुराण बखानत, गुरु महिमा भारी। स्वामी जय...

जप तप तीर्थ संयम, दान विधि दीन्हे, स्वामी दान बहुत दीन्हे,
गुरु बिन ज्ञान न होवे, दाता बिन ज्ञान न होवे, कोटि यत्न कीन्हे। स्वामी जय...

माया मोह नदी जल, जीव बहे सारे, स्वामी जीव बहे सारे,
नाम जहाज बिठाकर, शब्द जहाज चढ़ाकर, गुरु पल में तारे। स्वामी जय...

काम क्रोध, मद, लोभ, चोर बड़े भारी, स्वामी चोर बहुत भारी,
ज्ञान खड्ग दे कर में, शब्द खड्ग देकर में, गुरु सब संहारे। स्वामी जय...

नाना पंथ जगत में निज-निज गुण गावें, स्वामी न्यारे-न्यारे यश गावें,
सब का सार बताकर, सब का भेद लखा कर, गुरु मार्ग लावें। स्वामी जय...

गुरु चरणामृत निर्मल, सब पातक हारी, स्वामी सब दोषक हारी,
वचन सुनत तम नासे, शब्द सुनत भ्रम नासे, सब संशय टारी। स्वामी जय...

तन, मन, धन सब अर्पण, गुरु चरणन कीजै, स्वामी दाता अर्पण कीजै,
सद्गुरु देव परमपद, सद्गुरु देव अचलपद, मोक्ष गती लीजै। स्वामी जय...

आरती

आरति करहुँ संत सद्गुरु की, सद्गुरु सत्यनाम दिनकर की।
काम, क्रोध मद, लोभ नसावन, मोह रहित करि सुरसरि पावन।
हरहिं पाप कलिमल की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

तुम पारस संगति पारस तब, कलिमल ग्रसित लौह प्राणी भव।
कंचन करहिं सुधर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

भुलेहुँ जो जिव संगति आवें, कर्म भर्म तेहि बाँधि न पावें।
भय न रहे यम घर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

योग अग्नि प्रगटहि तिनके घट, गगन चढ़े श्रुति खुले वज्रपट।
दर्शन हों हरिहर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

सहस कँवल चढ़ि त्रिकुटी आवें, शून्य शिखर चढ़ि बीन बजावें।
खुले द्वार सतघर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

अलख अगम का दर्शन पावें, पुरुष अनामी जाय समावें।
सद्गुरु देव अमर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...

एक आस विश्वास तुम्हारा, पड़ा द्वार मैं सब विधि हारा।
जय, जय, जय गुरुवर की, आरति करहुँ संत सद्गुरु की॥ सद्गुरु...